[श्री द्वा. ग्र. माला - पुष्प २६]

“ चतुर्भुजदास ”

[जीवन-झांकी तथा पद-संग्रह]

सम्पादक :—

गो. श्री व्रजभूषण शर्मा

पो. कण्ठमणि शास्त्री

क. श्री गोकुलानन्द शर्मा

प्रकाशक :—

विद्या-विभाग

[अष्टछाप-स्मारक समिति]

कांकरोली.

सम्पादकीय - किञ्चित्

आयोजन—

दैवी सम्पत्ति के अनर्घरत्न महानुभावी अष्टछाप के भक्त कवियों की पद–संग्रह–प्रकाशन परम्परा में आज एक कडी और जोडी जा रही है, जो 'विद्याविभाग' कांकरोली की (अष्टछाप-स्मारक-समिति) योजना में तुरीय प्रयास और विराट् हिन्दी–साहित्य पुरुष की आपादलम्बिनी गद्यपद्यमयी सुवर्णमणि माला का अन्यतम मञ्जुल स्तवक है।

गोविन्दस्वामी, कुंभनदास, छीतस्वामी के पद–संग्रहों के उपरान्त 'चतुर्भुजदास' कृत पद–संग्रह का प्रकाशन एक प्राथमिकता को आत्मसात् किये हुए है।

गो. श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण द्वारा आविर्भूत कीर्तन–साहित्य जगत् में 'सूरसागर' और 'परमानन्द सागर' ऐसे 'पूर्वापर तोयनिधि' हैं, जो स्व–स्वरूप में अवस्थित होकर भी संश्लिष्ट हैं और जिनकी उत्ताल तरंगाकुल विपुल भाव–राशि में अन्य सुकृतियों की कृति स्रोतस्विनियों का अन्तर्लीन हो जाना असंभावित नहीं है। किसी विस्तृत संगमस्थली पर ही तदीय परिदर्शन और आचमन तत्–स्वरूप का परिचायक हो सकता है।

पद–विश्लेषण—

पुष्टिमार्गीय पद्यसाहित्य-यात्रा के सहचर अष्टछाप–कवियों की मंडली में नन्ददास और कृष्णदास तो स्वगत वैशिष्ट्य से पृथक् ही परिलक्षित हो जाते हैं। जहाँ एक में अतिशय भक्तिभाव भरित, कोमलकान्त, कीर्तन–कृति की ललितगति विलासमयी चमत्कृति का अनुभव होता है, वहाँ अपर में संस्कृतनिष्ठ, गांभीर्यार्थबोधक, दीर्घ, पदविन्यास का प्रत्यक्ष परिदर्शन। एतावता पद–रचना के राजपथ में एतदीय पदीय संकुलता का उतना भय

नहीं रहता जितना अन्यदीय का। अद्यावधि पूर्व प्रकाशित सभी पद-संग्रह संकलन की दृष्टि में प्रामाणिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से प्रकाशित किये जा चुके हैं। इस प्रकाशन के समकाल ही जहाँ कृष्णदास के 'कृष्णसागर' का अवगाहन प्रारंभ कर दिया गया है, वहां निश्चिन्तता से 'परमानन्द सागर' के प्रकाशन का उपक्रम भी किया जा रहा है।

परमानन्द-सागर और सूरसागर के पदों में भाषा, भाव, शैली, चमत्कृति और भावप्रवण धाराप्रवाह सभी में अद्‌भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है। शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय निर्गुण भक्ति के धरातल पर जहां इन दोनों में 'सालोक्य' भावना का उदात्त दर्शन होता है, वहाँ काव्य-प्रबन्ध सम्बन्ध में वे दोनों इतने 'सामीप्य' को प्राप्त हो जाते हैं, जो अकथनीय है*। अलौकिक भागवत लीलाभाव-भावना के आभूषणों से अन्तर्बाह्य अलंकृत उभय कवियों की 'सार्ष्टि' में कोई सन्देह ही नहीं रहता, तो भगवत्साक्षात्‌ एवं इष्ट-तन्मयता के 'सारूप्य' में उन्हें पहिचानना कठिन ही नहीं, असंभव भी हो जाता है। फलतः भक्तों द्वारा अनभीप्सित मोक्ष-चतुष्टय की लिप्सा से परे किसी अनुपम अद्‌भुत सरस भगवत्स्वरूप-सेवना में ही कोई विवेकी 'भेद-सहिष्णु अभेद-पद्धति' से उनका साक्षात्कार कर सकता है, और तभी अनुभवैकवेद्य उनके साहित्य का रसास्वाद।

इधर विपश्चिद्वर डा. श्रीगोवर्धननाथ शुक्ल एम. ए. (अलीगढ़, विश्वविद्यालय, हिन्दी प्राध्यापक) द्वारा सम्पादित 'परमानन्द सागर' का स्वतंत्ररूप से मुद्रण प्रारंभ हो गया है। गत वैशाख मास में श्रीवल्लभाचार्य चरणों की व्रजस्थित बैठकों की यात्रा के समय प्रसंगवश उन्होंने अद्यावधि मुद्रित सामग्री का मुझे दर्शन कराया था और सम्मिलित रूप में उसे प्रकाशित करने की रूपरेखा उपस्थित की थी। पर यह सफल न हो सकी। कारण स्पष्ट था कि, अद्यावधि मुद्रित सामग्री का कांकरोली की सम्पादित प्रेस-कापी से कैसे समन्वय किया जाय? जबकि-उभयत्र सम्पादकीय पद्धति, शाब्दिक रूप-निर्धारण वैषयिक वर्गीकरण के साथ पदों

---

* देखो— लेखक द्वारा प्रकाशित- 'सूरसागर के संदिग्ध पदों का विश्लेषण' नामक लेख (नागरी प्र. पत्रिका वर्ष ५९ अंक २ सं. २०११)

की संख्या में भी एक महद् अन्तर विद्यमान था। प्रारंभिक मुद्रित पदों में विषयानुसार प्राप्त होनेवाले अन्य अधिक पदों को कहाँ ठूंसा जाय ? अनुक्रम प्राप्त अन्तःपाती विषयों का कहां समावेश हो ? और उपादेय पाठभेद का योगक्षेम कैसे निर्वाहा जाय ? आदि बाधाएं ऐसी थीं जिनका कोई परिहार नहीं हो सकता था। शुक्लजी ने यद्यपि 'परमानन्ददास' सम्बन्धी स्वकीय निबन्ध में कांकरोली में विद्यमान हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है, पर सौकर्याभाववश उन्हें उनके दर्शन का सुअवसर भी नहीं मिला है। कुछ वर्ष पूर्व 'सुधा' (लखनऊ) में अथवा अन्यत्र ऐसी ही किसी प्रकाशित सामग्री से उन्होंने प्रतियों का परिचय संकलित कर लिया है। इधर उन्हें परमानन्ददास कृत लगभग ९०० ही पद मिल पाए हैं, जब कि, विद्या-विभाग के सम्पादन में १४०० के लगभग पद संकलित हो चुके हैं। प्रत्यक्षतः उक्त संभावित प्रकाशन 'परमानन्ददास कृत पद-संग्रह' ही कहा जा सकता है न कि :— 'परमानन्द सागर'। और यही सोचकर 'अष्टछाप-स्मारक समिति' कांकरोली ने स्वकीय सम्पादन को पृथक् रूप देना ही समुचित समझा है।

कहने का तात्पर्य यह कि— अष्टछापी कवियों के पदों का संकलन, सम्पादन, विश्लेषण अथच वर्गीकरण प्रोच्यमान निम्न आधारों पर सरलीकृत हो सकता है, जिसके लिये 'आद्यायचरता' के स्थान पर गंभीरता से कार्य करने की आवश्यकता है।

वे हैं :—

(१) सम सामयिक प्राचीन विभिन्न पोथियों का परस्पर सम्वाद। सिद्धान्तानुसार पाठभेद के औचित्यानौचित्य की समीक्षा +

(२) शु. सम्प्रदाय के पीठस्थलों में प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली कीर्तन-सामग्री का पर्यालोचन, और कीर्तन-पद्धति, उत्सव-प्रणाली एवं लीलाभावना का समन्वयात्मक अध्ययन।

(३) पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में आगत प्रसंगों के साथ पदों का संकलन और समवचयन। आदि।

+ प्रस्तुत विषय के उदाहरण रूप में सूरदासकृत "गोवर्धन लीला" का सम्पादित पद (वि. विभाग कांकरोली का प्रकाशन) देखा जा सकता है।

यद्यपि सम्प्रति हिन्दी-साहित्य में पुष्टिमार्गीय गद्य, पद्य, भाव, सिद्धान्त आदि पर कई विशेष अन्वेषण और अध्ययन प्रस्तुत किये जा रहे हैं, डा. श्रीधीरेन्द्र वर्मा, डा. श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल जैसे ख्यातिप्राप्त विद्वद्वरेण्य इस दिशा में अतिशय श्रद्धावान् तलस्पर्शी एवं प्रेरक प्रयोजक विद्यमान हैं, तथापि विगत दो युगों का अनुभव मुझे यह कहने को बाध्य करता है कि, अध्ययनशील हिन्दी के विद्वानों में अभी भी अनौदार्य दुराग्रह किम्वा अपरिज्ञान स्थान जमाये हुए है, जो वे साम्प्रदायिकता के हौआ के भय से पुष्टिमार्ग के निकट सम्पर्क में आते झिझकते हैं। यदि आते भी हैं तो निर्णीत धारणा अधिक और तथाकथित ज्ञान का उपनेत्र चढा कर। ऐसी अवस्था में तात्विक स्वरूपाज्ञान किम्वा विपरीत ज्ञान के अतिरिक्त उनके और क्या पल्ले पड़ सकता है? विश्वविद्यालयों के अध्ययनशील पदवी-प्रेप्सु छात्र ही नहीं, निष्णात प्राध्यापक और परीक्षक भी पिष्टपेषित, शाब्दिक रूपान्तरित अथच प्रसह्य प्रतिष्ठापित मनमाने उपकरण को ही स्वीकृत कर कृतार्थमन्य हो जाते हैं। 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' ही प्रयोग होता चला आता है, इतिहास-लेखन में नवीन गवेषणा को स्थान नहीं मिल पाता। इस दिशा में क्या व्यक्ति? क्या संस्था? सभी समान पथ के पथिक बने हुए हैं, किसको क्या कहा जाय? अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इन सब विप्रतिपत्तियों का संशोधन, समाधान, परिमार्जन तभी संभव है, जब शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय मूल आधारभूत हिन्दी गद्य-पद्य का विपुल विस्तृत साहित्य साहित्य-जगत् के प्रकाश में लाया जाय, अथच उसका अध्ययन हो। विपश्चिदपश्चिमों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने के निमित्त ही इस प्रकाशन की क्रमिक परम्परा में : आज 'चतुर्भुजदास' कृत पद-संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है।

आदर्श प्रतियाँ—

'चतुर्भुजदास' कृत पद-संग्रह के प्रस्तावित सम्पादन में कांकरोली विद्याविभागीय सरस्वती-भंडार के हिन्दी-विभाग में विद्यमान निम्नलिखित आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया है :-

(१) वर्षोत्सव तथा नित्यकीर्तन पद-संग्रह । हि. बं. १/१ ।
पत्र १९२ । पूर्ण । प्रतिपत्र पंक्ति १७ । आकार ११ × ९॥।
लेखन काल सं. १८८८ आषाढ कृ. ६ भृगौ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(२) कीर्तन-संग्रह (चतुर्भुजदास कृत पद-संग्रह) हि. बं. २/१ ।
पत्र २ से २३ । अपूर्ण । पंक्ति २१ । आकार ९ × ८ ।
लेखक— ओंकारजी भूषणदास मोदी । लेखन समय :—
लगभग २०० वर्ष पूर्व ।

(३) कीर्तन-संग्रह (प्रात:काल के) हि. बं. ३/१ । पत्र ४१० ।
अपूर्ण । पंक्ति १६ । आकार ९॥। × ६ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(४) कीर्तन-संग्रह (उत्सव के) हि. बं. ३ × २ । पत्र ४६८ ।
पूर्ण । पंक्ति १४ । आकार ९॥ × ९ । लेखन समय सं. १८४६
का. व. २ । लेखक द्वारकादास भगवानदास पखावजी । पोथी
भगवानदास की ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(५) कीर्तन-संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. बं. १९/५ । पत्र ७० । अपूर्ण ।
पंक्ति १४ । आकार ६ × ३॥। ।

(६) कीर्तन संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. बं. १० ६/४ । पत्र १९५ से
२३९ । अपूर्ण । पंक्ति १६ । आकार १०॥ × ७ ।
(लेखन समय सं. १६५५ के लगभग । जीर्णपत्र । कीटकर्तित ।
इसमें अष्टछापी अन्य कवियों के पदों का भी शुद्ध और प्रामाणिक
संकलन है— जो सर्वापेक्षया उपादेय है । अपूर्ण होने पर भी
इससे, लगभग २०० पदों की सामग्री मिली है)

(७) कीर्तन-संग्रह (नित्यपद) हि. बं. २७/४ । पत्र २४५ । अपूर्ण ।
पंक्ति १४ । आकार ५। × ६॥ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(८) कीर्तन-संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. बं. ८१ ३/२ । पत्र २१ ।
पूर्ण । पंक्ति २७ । आकार १५॥ × १० । ।
लेखन समय सं. १८...... श्रा. कृ. ३ शुक ।
(इसमें कृष्णदासकृत कृष्णसागर (पद-संग्रह) भी है । भगवदीय कीर्तनिया श्री जमनादास जरीवाला बंबई, द्वारा समर्पित)

(९) कीर्तन-संग्रह (नित्यपद राग-क्रम से) हि. बं. ११६/१ ।
पत्र २५२ । अपूर्ण । पंक्ति २२ । आकार १४ × ९॥ । जीर्ण ।
(श्री गब्बूलालजी वर्मा कांकरोली द्वारा समर्पित)

इन प्रतियों के अतिरिक्त सरस्वती-भंडार में विद्यमान अन्य पोथियों से भी चतुर्भुजदास कृत पदों का संचयन किया गया है, जिनकी प्रायः सूची 'कुंभनदास-पद संग्रह की भूमिका' में दी गई है । कवि कृत कितने ही पद प्रारंभिक पाठभेद से मिलते हैं, जिनका निर्देश प्रतीक-सूची में कोष्ठक में किया गया है ।

चतुर्भुजदास कृत पदों में उनकी छाप तीन रूपों में मिलती है :—
(१) चत्रुभुज (२) चत्रुभुजदास (३) दास चतुर्भुज । संगीत सम्बन्धी माधुर्य के लिये नाम का रूपान्तरित होना सहज है, जिसके लिये अन्यकृत होने की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी चाहिये ।

चतुर्भुजदास कृत पदों के प्रारंभिक संकलन में यद्यपि चारसौ सवा चारसौ पदों का समावेश हो गया था, पर अध्ययन के अनन्तर प्रामाणिक रूप में अन्य कवि कृत होने एवं प्रारंभिक पाठ-भेद के कारण उनको स्थान नहीं दिया गया । जैसा कि-आगे कहा जा रहा है-कुंभनदास कृत पदों के संश्लेष के अतिरिक्त इन पदों में अन्य के पदों का समावेश नहीं है । यह पद निश्चित रूप में चतुर्भुजदास कृत हैं ।

वर्गीकरण—

पदों के विषय वर्गीकरण में प्रतियों के आधार पर प्राचीन पद्धति को अपनाते हुए इस प्रकार नामकरण किया गया है :—

(क) वर्षोत्सव—जिसमें जन्माष्टमी (भा. कृ. ८) से लेकर रक्षा-बंधन (श्रा. सुद १५) तक विभिन्न उत्सवों एवं प्रसंगों पर संकीर्त्यमान

पदों का समावेश है। इसमें १ से १३५ संख्या तक (१३५) पदों का संकलन है।

(ख) लीला—जिसमें श्री नन्दनन्दन यशोदोत्संग लालित श्रीकृष्ण की बाल्य, पौगंड, कैशोर अवस्थाओं की विविध लीला के पदों का समावेश है। इसमें १३६ से ३५० संख्या तक (२१५) पद हैं।

(ग) प्रकीर्ण—जिसमें उक्त दोनों विषयों से बहिर्भूत विषयों का अवचयन है। इसमें ३५१ से ३५९ तक (९) पद हैं। तथा ३६० से ३६५ तक (६) पद परिशिष्ट के हैं। इन पदों का एकत्र योग ३६५ होता है।

इन यावत्प्राप्त पदों की अपेक्षा चतुर्भुजदास कृत कुछ अन्य पद भी अन्यत्र प्रामाणिक पोथियों में मिल सकते हैं-पर ऐसी संभावना बहुत कम है, फिर भी उनका संकलन किया जा सकता है।

पाठभेद के सम्बन्ध में प्रामाणिक और शुद्ध प्रति को ही महत्व देकर शेष साधारण पोथियों की उपेक्षा कर दी गई है। क्योंकि, उससे अभीप्सितार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकी है।

शाब्दिक रूप-निर्धारण—

पदों की भाषा के अन्तर्गत शब्दों के निर्धारित रूप-सम्बन्ध में अद्यावधि व्रजभाषा-विशेषज्ञों का ऐकमत्य नहीं हो पाया है। प्रान्तभेद के कारण-जिसमें व्रज, अवध, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, मध्य प्रदेश, युक्त प्रान्त आदि की बोलियों के उच्चारण-भेद से विभिन्नता प्रत्यक्ष दीख पडती है लेखन-लिपि-में भी उसका अपरोक्ष प्रभाव पडता है। प्रान्तीय लेखक प्रान्तीय शब्दोच्चारण की विवशता के कारण तदनुरूप शब्द-लिपि को ढालता है, और उसमें विभिन्नता स्वभावतः अज्ञात रूप में चली आती है। सरस्वती-भंडार में प्राप्त प्राचीन प्रामाणिक शुद्ध प्रतिलिपियों में भी एक ही शब्द स्थानान्तर में कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है, कहीं सानुनासिक निरनुनासिकता है, तो संप्रसारण और असंप्रसारण का भी प्रयोग है, एक मात्रा और दो मात्राओं का विभेद दृष्टिगत होता है, तो ह्रस्व दीर्घ की समस्या भी सामने आ जाती है। एक ही ' नयन ' शब्द ' नैन ' नैंन ' नयन ' के रूप में

लिखा मिलता है, 'आयो' आयौ,' मेरो , मेरौ ' में एक मात्रा दो मात्राओं का दोनों का प्रयोग लिखा मिलता है। 'स्याम' 'श्याम' 'सोभित' 'शोभित' आदि में 'स' 'श' को एक रूप देकर 'श्रवण' को 'श्रवन' 'स्रवन' और स्त्रौन लिखा जा सकता है 'आज' कहीं 'आजु' के रूप में है तो 'पल' 'पलु' और 'तन' 'तनु' 'मन' 'मनु' भी लिखा मिलता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में गंभीरता और धैर्यपूर्वक शब्दों का रूप निश्चित करना आवश्यक है, जो सहेतुक प्रामाणिक और शुद्ध हो। प्रस्तुत सम्बन्ध में कुछ नियमों का संकलन किया गया है, जिस पर अन्य अवशिष्ट अष्टछाप-साहित्य के प्रकाशित हो जाने पर विचार किया जायगा। सम्प्रति तो उच्चारण माधुर्य को महत्व देकर प्राचीन आधार पर यथासंभव शब्दों का रूप लिखा जा रहा है। जिसमें द्वैविध्य का भी समावेश हो सकता है। मैं व्रजभाषा के लिये व्याकरण के नियमों में कुछ ढिलाई देकर शब्दों के प्रिय मधुर उच्चारण का पक्षपाती हूं।

संमिश्रण—

अष्टछापी कवियों में 'चतुर्भुजदास' और 'कुंभनदास' में साहचर्य, पार्थक्य दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं। जन्यजनक (पुत्र-पिता) के भाव से सम्बन्धित अथच अवस्थाकृत विभेद से जहाँ दोनों कनिष्ठ-ज्येष्ठ भावापन्न हैं, सतीर्थ्यता में भी समानकोटिक नहीं हैं। कुंभनदास श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य हैं तो चतुर्भुजदास प्रभुचरण गो. श्रीविट्ठलेश के। पर साहित्य-संगीत-कला के उत्कर्षाधायक श्रीविट्ठलेश द्वारा अष्टछाप के महा सत्र में दोनों का समान कक्षा में वरण किया गया है। यहाँ लौकिक भेदभाव को महत्व न देकर भक्ति-काव्यमयी उदात्त भावना के आधार पर उभय ऋत्विजों को श्रीगोवर्द्धननाथजी की कीर्तन-सामगीति का सौभाग्याधिकारी निर्वाचित किया गया है। एतावता अन्य कवियों के समान इन दोनों में भी यदि भाव-साम्य दृष्टिगोचर होता है तो कोई आश्चर्य नहीं, छाप-परिवर्तन के कारण संकलनकर्ता की असावधानी से भी पदों में संमिश्रण असंभव नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार पाठभेदपूर्वक किञ्चित् परिवर्तित दोनों के कतिपय पद इस प्रकार उपलब्ध होते हैं :—

		चतु. पद सं.×	कुंभन. पद सं.×
(१)	अछन अछन पगु धरनि धरै	२९५	
	(जो तू अछुत अछुत ,,)		२८५
(२)	आरोगत नागर नंदकिसोर	१६६	
	(आरोगत मोहन मंडल जोर		१८२
(३)	चलि अंग दुराए संग मेरे	२९८	
	,, ,, ,,		२८३
(४)	तेरौ मनु गिरिधर बिनु	३१४	
	,, ,, ,,		२८७
(५)	बंदू जो तबहिं मान धरि आवै	२३७	
	(बदे जो जबहिं मान धरि)		२८८
(६)	व्रज पर नीकी आजु घटा	११४	
	(व्रज पर नीकी आजु घटा हो)		९७
(७)	श्रीलछमन भट देत बधाई	१०५	
	(श्रीलछमन गृह आज बधाई)		८२
(८)	सिर परी ठगौरी सैन की	२४३	
	(,, ,, ,,)		३९०
(९)	स्याम सुनु नियरौ आयो मेहु	११५	
	(,, ,, ,,)		११४

उपसंहृति—

यद्यपि मुद्रण एवं संशोधन में सावधानी बर्ती गई है, तथापि-देशान्तर की उपस्थितिवश उसमें कतिपय त्रुटियों का रहजाना स्वाभाविक है। मशीन के

× यह-पद संख्या कांक. वि. विभाग द्वारा प्रकाशित पदसंग्रह से दी जा रही है ।

कारण भी अक्षरों मात्राओं के विलोप से समीचीनता कुछ तिरोहित हो गई है, जिसके अर्थ शुद्धिपत्रक लगाया गया है। व्यवस्थापूर्वक मुद्रण के लिये चेतन प्रकाशन मंदिर, बडौदा के अध्यक्ष पं.श्री मोतीदासजी चेतनदासजी का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता-जिन्होंनें मथुरा, (व्रज-मण्डल) नागपुर जबलपुर आदि स्थानों में मेरे प्रवास के समय प्राथमिक प्रूफ-संशोधन में सहयोग दिया है।

अष्टछाप-साहित्य-प्रकाशन के प्रेमी उस भगवदीय महानुभाव की साहित्य-सेवा का भी स्मरण किया जाना चाहिये, जिसने यथाशक्ति आर्थिक सहयोग देकर भी अपने नाम-प्रकाशन की अनुज्ञा नहीं दी है। अस्तु शम्

जन्माष्टमी
संवत् २०१४
दि. १९-८-१९५७

शुभाशाभिलाषी,
प्रो० कण्ठमणि शास्त्री
संचालक-विद्याविभाग,
कांकरोली (राज)

श्री चतुर्भुजदास

[जीवन-झांकी]

जीवन का लक्ष्य—

लीला – नाट्यधारी अद्भुतकर्मा परमात्मा की रंगस्थली पर जीव-परम्परा में क्रमशः अवतरित विशिष्ट मानव, उदात्त गुणों की समष्टिवाला वह पात्र* है, जो– स्वकीय मंजुल अभिनय से सूत्रधार, पात्र और दर्शकों को आनन्दित करता है, अथच 'रसोवै सः' के हृदयैक संवेद्य परमानन्द-संवित् में मग्न रहा करता है।

साहजिक, शैक्षिक, संस्कारोद्भूत पद्धति से समधिगत साम्मुख्य, अभिनय–कौशल एवं क्रिया की तद्रूपता के न केवल प्रदर्शन से अपितु जीवन में अनवद्य चरित्र–चित्रण से भी परितः प्रमोद का अभिवर्षण करना ही मानव–जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए। पाषण्डात्मक सर्व–सन्यास की ढपली पीट कर 'स्व' की सीमित कलेवर–कोठरी में एकाकी आत्मानन्द का घूंट गटक लेना भले ही पुरुषार्थ हो सकता हो? पर वह परम पुरुषार्थ तो नहीं है, पाशविक मनोवृत्ति है, जहाँ 'स्व' ही सब कुछ है। जगत् की काल्पनिक नश्वरता की विभीषिका में 'यल्लब्धं तल्लब्धं' की दृष्टि से जीवन के छोर में यत्किञ्चित् बांध कर मृत्यु के पंजे से दूर भागने का प्रयत्न अमृत पुत्रों का निर्विशेष 'पलायनवाद' है। इस पलायन में न तो उसे कहीं विश्राम मिल सकता है न आत्म–सन्तुष्टि ही।

कतिपय कठोर सिद्धान्तवादी, शास्त्रीय दृष्टिकोण में 'पुरुषस्य अर्थः' और 'परमश्चासौ पुरुषार्थः' इस विग्रह–पट में 'परम पुरुषार्थ' शब्द को लपेट कर समाधिस्थ कर देते हैं, पर शुद्धाद्वैतवादी 'परमश्चासौ पुरुषः' और 'परमपुरुषस्य + अर्थः' = परमपुरुषार्थः के वसनाञ्चल में 'स्व' और 'पर' की अनुपम झांकी करता है– जो विज्ञान की दुनिया में नया दृष्टिकोण होता है। 'सखण्ड–अद्वैत–ज्ञान' की अपेक्षा 'अखण्ड–शुद्ध–अद्वैत' का ज्ञान ही उसका घोष होता है। 'आत्मैवेदं' के प्रथम 'ब्रह्मैवेदं' को वैशिष्ट्य देकर वह महानुभाव जगत के जीवन को सरस बनाता है। स्वयं

विकसित होकर जगत के जीवों को विकसित, आह्लादित, परम रंजित करना ही सन्त-परम्परा का असाधारण लक्षण है, जिसमें 'अष्टछाप' और उनके अनुयायि भक्तों का भी महत्वपूर्ण समावेश है। महानुभावी भक्त कवि, अष्टछाप के वयोवृद्ध अन्यतम प्रतीक, महात्मा कुंभनदासजी के मझे आत्मज, चतुर्भुजदासजी का नाम भी इसी प्रसंग में बड़े गौरव के साथ लिया जा सकता है, जिन्होंने स्वल्प वय में ही क्या काव्यशक्ति ? क्या भक्तिभाव ? सेवानुभव एवं भगवन्मयता, वैष्णवता आदि में इतर महानुभावों की समकक्षता अधिगत कर ली थी और जो-प्रारंभ से ही दैवी गुणों की प्रतिभा से जगमगाने लगे थे।

हिन्दी साहित्य में चतुर्भुजदास—

बालकवि चतुर्भुजदास के पिता कुंभनदास व्रजमण्डल में 'जमनावता' ग्राम के निवासी गौरवा क्षत्रिय थे। जो 'दैवाल्लब्धेन सन्तोषः' से खेतीबारी और आत्मविचरणार्थैन' के लक्षणों का परिपालन करते हुए श्री गोवर्द्धन-नाथजी की त्रिविध सेवा में ही अपना सर्वस्व समर्पण कर चुके थे। भगवत्सेवा और भगवल्लीला-गुणगान ही जिनका श्रेय प्रेय था, भगवद्-भक्तत्व ही जिनके पारिवारिक मोह का कारण था।

अष्टछाप की वार्ता और दोसौ बावन वै. की वार्ता में सुवेदित होते हुए भी कुंभनदासात्मज चतुर्भुजदास के चरित्र-सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। निर्णयात्मक अध्ययन की ओर हिन्दी के विद्वानों का रंचमात्र भी प्रयास दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

नागरी-प्रचारिणि सभा की खोज रि. के आधार पर मि. बं. विनोद में इस सम्बन्ध में कितनी गडबड की गई है। चतुर्भुजदास नामक कुछ कवियों का परिचय वहाँ इस प्रकार दिया गया है :—

(५६) चतुर्भुजदास—ये स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य और कुंभनदास के पुत्र थे। 'इनका वर्णन २५२ वै. वार्ता में है इनकी गणना अष्टछाप में थी। इनकी अल्ल गौरवा थी। इन्होंने '**मधु मालती री कथा**' एवं '**भक्ति-प्रताप**' नामक ग्रन्थ भी बनाए हैं। आपका समय १६२५ के लगभग था।

इनके ४९ पद एवं समैया के पद नामक एक ग्रन्थ हमने देखा है। **इनका एक ग्रन्थ ' द्वादश यश ' नामक** और देखने में आया है, जिसमें सं. १५६० लिखा है। जान पड़ता है यह समय अशुद्ध है। संभव हैं यह ग्रन्थ किसी दूसरे चतुर्भुजदास का हो। ' हित जू **कौ मंगल ' नामक इनका एक** और ग्रन्थ खोज में मिला है "

(२८०) स्वामी चतुर्भुजदासजी–अष्टछाप वाले इसी नाम के कवि से पृथक् हैं। उनका समय १६२५ था और इनका सं. १६८४। इनके बनाए हुए (१) धर्मविचार, (२) सिच्छासार (३) हितउपदेश (४) पतितपावन (५) मोहनी जस (६) अनन्य भजन (७) राधाप्रताप (८) मंगलसार (९) विमुख सुखभंजन नामक ग्रन्थ हमने छत्रपुर में देखे हैं। ' **द्वादशयश** ' भी इन्हीं की एक रचना है। प्र. त्रै. खोज से इनके एक और ग्रन्थ ' **हित जू कौ मंगल** ' का पता चलता है "

" (१०२२/२) चतुर्भुजदास कायस्थ । ग्रन्थ–**मधुमालती की कथा**। रचनाकाल सं. १८३७ के पूर्व [खोज १९०२] "

प्रस्तुत उद्धरणों में विशिष्ट शब्दों के परस्पर विरुद्ध–वर्णन पर ध्यान देने से विद्वान् लेखक की असम्बद्ध उक्तियों का स्वयं पता चल जाता है।

अभी कुछ दिन पूर्व पं. कालिकाप्रसाद दीक्षित ' कुसुमाकर ' ने ' शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ ' (सा. खं. पत्र १७, १८) में मध्यप्रदेश के हिन्दी कवियों का परिचय देते हुए इसी त्रुटि को अपनी गवेषणा बना डाला है। उन्होंने लिखा है :—

" इनमें से कुंभनदास और चतुर्भुजदास गढा (जबलपुर) के निवासी थे। चतुर्भुजदास कुंभनदासजी के पुत्र थे। ' द्वादशयश ' ' भक्ति प्रताप ' और ' हितजू कौ मंगल ' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनके सम्बन्ध में नाभादास ने अपने ' भक्तमाल ' में लिखा हैं :—

गायो भक्त प्रताप सबहिं दासन्त कहायो।
राधा वल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढायो॥
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषण।
भक्तन की पद–रेणु वहै धारा सिर–भूषण॥

सत्संग सदा आनन्द में रहत प्रेम भींजो हियो।
हरि वंश भजन बल 'चतुरभुज' गौड देश तीरथ कियो॥

'गौड देश तीरथ कियो' से स्पष्ट है कि, नाभादासजी की दृष्टि में चतुर्भुजदास का कितना महत्व था। और उनके कारण गौड देश अर्थात् गौडवाना भक्तों की दृष्टि में कितना ऊंचा उठ गया था"।

'कुसुमाकरजी' का यह लेख कितना भ्रमपूर्ण है, स्पष्ट प्रतीत होता है। अष्टछाप के चतुर्भुजदास के समकालीन एक और चतुर्भुजदास श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण के शिष्य थे, जो 'मिश्र' उपाधिधारी ब्राह्मण और बादशाह अकबर के सम्मानित पंडित और कवि थे। इनका चरित्र 'दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में (सं. २४९) दिया हुआ है।

डा. दीनदयालु गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ (पत्र ३८४) में एक प्रति का परिचय देते हुए इस सम्बन्ध में भद्दी भूल की है। लिखा है :—

"प्रति नं. ७२/१ इस पोथी में चतुर्भुजदास मिश्र गो. श्रीविट्ठलनाथजी के सेवक द्वारा विरचित 'भाषा संग्रह शान्त रस' नामक ग्रन्थ है, जिसकी रचना का संवत् १७०२ वि. दिया हुआ है। ये चतुर्भुजदास मिश्र अष्टछाप के चतुर्भुजदास गौरवा क्षत्रिय से भिन्न हैं"।

उक्त कथन में गो. श्रीविठ्ठलनाथजी के शिष्य मिश्र चतुर्भुजदास की स्थिति सं. १७०२ तक असंभवित है। श्रीगुसांईजी का समय सं. १५७२–१६४२ निश्चित है। अतः यह रचना मिश्र चतुर्भुजदास की न होकर किसी अन्य चतुर्भुजदास की होगी, ऐसा मेरा मत है।

वार्ताओं में सुविदित चरित्र की ओर ध्यान न देकर अनर्गल लेखन का यह एक उदाहरण है। ऐसे लेखन और अध्ययन से हिन्दी साहित्य में तथ्य पर क्या प्रकाश पड़ सकता है?

कुंभनदास और उनके पुत्र चतुर्भुजदास प्रारंभ से ही ब्रज के निवासी रहे हैं। जैसा कि वार्ता में कहा गया है। वे व्रज छोडकर कहीं अन्यत्र नहीं गए। नागरी प्र. सभा, मिश्र ब. विनोद आदि प्राय: किसीने इसका विश्लेषण नहीं किया और अन्य चतुर्भुजदास के चरित्र, ग्रन्थनिर्माण आदि को नामसाम्य से अष्टछापी चतुर्भुजदास में सम्मिलित कर दिया है।

वास्तव में कुंभनदासात्मज अष्टछापी चतुर्भुजदास न तो गौडदेशवासी थे, और न उन्होंने 'द्वादश यश' 'भक्ति-प्रताप' और 'हितजू को मंगल' नामक कोई ग्रन्थ ही बनाया है। 'मधुमालती' नामक ग्रन्थ भी इनका रचित नहीं है। वह चतुर्भुजदास कायस्थ का है। श्रीविट्ठलनाथजी के अनन्य शिष्य होने के कारण अष्टछापी चतुर्भुजदास ने भक्तिसम्बन्धी पदरचना के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ नहीं बनाया।

इनकी छाप से लगभग ४०० पद प्राप्त होते हैं, जिनमें कुछ कुंभनदास कृत भी सम्मिलित हो गए हैं। विश्लेषण के बाद इनके ३६५ पद यहाँ प्रकाशित हैं। कीर्तन–पदों में 'दास चतुर्भुज' 'चतुर्भुज' और 'चतुर्भुजदास' इस प्रकार की छाप मिलती है।

नाभादासजी ने अपने 'भक्त–माल' ग्रन्थ में जिन चतुर्भुजदास का उल्लेख किया है, वे अष्टछापी चतुर्भुजदास से भिन्न हैं। कुंभनदास के पुत्र चतुर्भुजदास का न तो भक्तमाल में और न प्रियादासकृत उसकी टीका में ही कहीं उल्लेख हुआ है। ध्रुवदासकृत 'भक्त-नामावली' में जिन चतुर्भुज भक्त का नाम दिया है, उससे कोई विशेष जिज्ञासा की पूर्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था में पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में ही इनका आवश्यक मौलिक परिचय जाना जा सकता है।

चारित्रिक सार्थकता—

मानव की साधारण कक्षा से ऊंचे उठे हुए संतभक्तों का विशेष भौतिक परिचय पाजाने से उनका कोई विशेष गौरव सिद्ध नहीं होता। उससे होता भी क्या है? महत्व उनकी उस उत्कर्ष स्थिति से आंका–जाता है, जो उन्होंने विषमताओं से संघर्ष कर त्याग, संयम, भक्ति, विराग, द्वन्द्व–सहिष्णुता और सेवाभावना से संप्राप्त की है। भौतिक जन्मकाल के परिज्ञान की अपेक्षा उनके उस जन्म का विशेष महत्व होता है, जिसे 'द्विज' संज्ञा दी जाती है और जब वे बहुसंभवान्ते किसी सद्गुरु की पीयूषवर्षिणी शरण में आकर उनके क्षेमंकर उपदेश का परिपालन करते हुए भूतल की अवस्थिति को सार्थक करते हैं– 'तनु–नवत्व' प्राप्त कर लोक-सेवा के पथ में शान्तिसुखदायिनी भगवत्सेवा का ध्येय पूरा करते हैं। उनका यह जन्म काल की क्षुद्रपरिधियों से नापा–तौला नहीं जाता। वही उनका आदि और वही उनका अन्त होता है।

उनके अध्रुव जराशीर्ण देह-परित्याग का भी कोई वैशिष्टय नहीं होता। वे यशःकाय से सर्वदा भूतल को अलंकृत करते हैं- उनका अक्षर देह अविशीर्यमाण होकर सतत स्थायी दिव्य हो जाता है। प्रतिष्ठा, धन, यश आदि उनके स्पृहणीय नहीं होते। आत्मख्याति से दूर-सुदूर एकान्त में तूष्णींभाव से अन्तगतपाप, पुण्यकर्मा, और द्वन्द्वमोहविनिर्मुक्त होकर भजन-भावना-विष्ट रहना ही उनका परम कर्तव्य होता है- एतदर्थ वे दृढव्रत होते हैं। ×

यह परिस्थिति प्रायः भारतीय सभी साधु सन्त महात्मा भक्तों की रही है— तब फिर चतुर्भुजदास ही इसके अपवाद कैसे रह सकते थे? प्रसंगोपात्त जिस किसी रूप में मिल जानेवाले लौकिक परिचय की अपेक्षा विशिष्ट-सम्माननीय अथच उल्लेखनीय आत्मिक परिचय ही उनका विशद व्यापक और वही उनके परिचयार्थ पर्याप्त होता है।

उपलब्ध वृत्त—

अष्टछाप वार्ता से विदित है कि- चतुर्भुजदास के पूर्व कुंभनदास के छै पुत्र और एक पुत्री थी। बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाने के कारण पुत्री पिता के आश्रय में रह कर उनकी सेवा शुश्रूषा करती थी। * प्रथम के पांच पुत्र (जिनके नाम नहीं मिलते) लौकिक जीवन में ही आसक्त थे। ग्रामीणरहनसहन एवं सत्संगाभाव से उन सबका झुकाव कर्म, धर्म, भक्तिभाव की ओर नहीं था, और इसीसे कुंभनदास ने विरक्त होकर कुछ जमीन जायदाद देकर उन पांचों को पृथक् कर दिया था। कुंभनदास आसक्ति रहित होकर स्वयं अपनी जीविका चलाते थे। कुंभनदास का एक छठा पुत्र कृष्णदास था, जो श्रीगोवर्द्धननाथजी की गोचारण की सेवा करता था।

× येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः। [गीता ७/२८

* कुम्भनदासजी की वार्ता में 'भतीजी' का उल्लेख है, पर चतुर्भुजदास की वार्ता में पुत्री का। वहां लिखा है :—

(१) "सो कुम्भनदास की एक भतीजी हती" (अष्टछाप' कांकरोली प्र.पत्र २४५)

(२) " और इनके एक बेटी हती। सोऊ परम भगवदीय हती। सो ब्याह होत ही वाकौ भरतार कालवस भयो। तातैं वह बेटी सदा कुम्भनदास के घर रहती " (अष्टछाप' कांक. प्र. पत्र ४५८)

पृथक २ उल्लेख से यह विषय सन्दिग्ध है।

तरुण अवस्था में ही गाय के संरक्षण में इसने अपने नश्वर शरीर को सिंह के समर्पण कर महाराजा दिलीप का उदाहरण प्रस्तुत किया था। कुंभनदास वैष्णवता के कथा-प्रसंग रहित सेवापरायणता के केवल लक्षण से कृष्णदास को अपना आधा पुत्र कहकर उससे पूर्ण संतोष नहीं करते थे। भगवद्वैमुख्य के कारण प्रथम पांच पुत्र तो उनके 'पुत्रत्व' की गणना में आते ही नहीं थे। +

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के 'निरोधलक्षण' ग्रन्थोक्त 'पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः' इस सिद्धान्त से पुत्र में कृष्णप्रियता ही कुंभनदास की पितृत्वभावना का आधार था। यह कृष्णप्रियता सेवा और कथा दोनों से ही सम्प्राप्त होतीहै-फलतः कुंभनदास उभय गुणों की अवस्थिति अपने किसी पुत्र में देखना चाहते थे। वे चाहते थे कि- सच्चे अर्थ में पितृवात्सल्य का पात्र उनके सम्मुख आए और वह परमाराध्य प्रभु की उभय लीलाओं का रसावगाहन कर उन्हें भी उससे अभिषिक्त किया करे।

प्रस्तुत प्रसंग में वार्ता में कहा गया है :—

"सो कुंभनदास के मन में आई जो ऐसो कोई पुत्र न भयो जासों मैं अपने हृदै कौ भाव सब कहों, और जासों सब भगवद्वार्ता करों (तासों कुंभनदास उदास रहते)"*

जन्म और शरणागति समय—

कुंभनदासजी के प्रस्तुत सत्संकल्प की एक दिन पूर्ति हुई। जिस समय पुत्र-जन्म का समाचार इनके कर्णगोचर हुआ, उस समय वे श्रीगोवर्द्धननाथजी की माखन चोरी-लीला का मानस-दर्शन करते हुए पद-रचना में तल्लीन थे। 'आनि पाए हो हरि नीकें' (कुम्भनदास पद-संग्रह सं. १२९) की मधुर रचना में वे उस साक्षात् चतुर्भुज भगवत्स्वरूप का अनुसन्धान कर रहे थे- जब बालक श्रीकृष्ण दोनों हाथों में दही और माखन की हांडी संभाले हुए और दो हाथ प्रकटकर कमर में खुलते हुए पीताम्बर की गांठ

+ अष्टछाप—कुंभनदास की वार्ता पत्र २७० (कांक. वि. प्रकाशन)

* अष्टछाप (कांक. प्रकाशन) पत्र ४५९

लगा रहे थे। कुम्भनदास ने उस समय दर्शन किये कि–सहसा किसी व्रजबाला ने आकर ज्योंही कृष्ण को पकडा, वे उसकी बड़ी अँखियाओं में दहीं का कुल्ला मारकर कीक देते हुए भाग खडे हुए। ' भरि गंडूष छींटि नैननि में गिरिधर धाइ चले दै कीकें ' की विनोदपूर्ण सख्य-भावना से कुम्भनदास ने जिस ' चतुर्भुज ' स्वरूप के दर्शन किये थे, स्मारक-रूप में उन्होंने पुत्र का नाम ' चतुर्भुज-दास ' रख दिया। *

' सम्प्रदाय कल्पद्रुम ' के आधार पर इनका जन्म सं. १५९७ मानने पर जैसा कि, अभीतक प्रसिद्ध है, सं. १६०२ में जबकि ' अष्टछाप ' की स्थापना हुई, इनकी वय ५ वर्ष की होनी है, जो सूरदास और कुम्भनदास आदि वयोवृद्धों के लिये एक बड़ी चुनौती है। वार्ता के कथनानुसार+ गुसांइजी की शरण में आने के समय चतुर्भुजदास केवल ४१ दिन के शिशु थे। प्रभुदयालजी मीतल के लेखानुसार× यदि इस असामञ्जस्य को ठीक करने के लिये सं. १५८७ को जन्मसंवत् और सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में निर्दिष्ट १५९७ को शरणकाल संवत् माना जाय तो ४१ दिन वाली उक्ति विरुद्ध पड़ती है। ऐसी अवस्था में चतुर्भुजदास का जन्म सं. १५७५ से ८० के भीतर माननाही संगत है – जैसा कि, मैंने ' कांकरोली का इतिहास ' (पत्र १२० ब) में लिखा है और ४१ वें दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी की शरण आए-श्रीगुसांइजी के नहीं–जैसा कि, पिंडरू निवृत्ति के बाद व्रजवासियों में आज भी होता है। इस समय श्रीगुसांइजी भी बालक थे। जब कि, संस्थानाधिपतित्वेन उनका सम्प्रदाय में वर्चस्व, आधिपत्य नहीं था। गुसांइजी का जन्म सं. १५७२ है और वे अपने पितृचरण श्रीवल्लभाचार्य के लीलातिरोधान (सं. १५८७ आषाढ शु. २) के समय १५ वर्ष के थे। श्रीवल्लभाचार्य कुल ४२ दिन सन्यास–आश्रम में स्थित रहे। सं. १५८७ के प्रारंभ में वे अपने पुत्र–परिवार के साथ काशी में ही विराजमान थे।

---

* अष्टछाप (कांक. प्रकाशन) पत्र ४६१–६३

\+ डा. दीनदयालु गुप्त ने ' अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय ' नामक ग्रन्थ (पत्र २६५ और ३८०) में इसी जन्मसंवत् को माना है, जो कई कारणों से विरुद्ध पडता है।

× अष्टछाप परिचय (द्वि. सं. पत्र २७२)

सं. १५८७ में यदि चतुर्भुजदास का जन्म मानकर ४१ वें दिन उनके श्रीगुसांइजी के शरण आने को प्रामाणिकता दी जाय तो उस समय श्रीगुसांइजी की व्रज में उपस्थिति संभव नहीं थी। अपने पिता श्रीवल्लभाचार्य के लीलाप्रवेश के उपरान्त लगभग ५-६ मास तो वे काशी में रहे होंगे।

इन सब हेतुओं से सं. १५७५ से ८० के भीतर चतुर्भुजदास का जन्म और १५९७ में श्रीगुसांइजी के द्वारा आत्मनिवेदन की दीक्षा लेना अधिक संगत हो सकता है - जबकि, श्रीगोपीनाथजी की कार्यविरति और प्रदेश-परिभ्रमण के कारण श्रीगुसांइजी को आचार्यत्व प्राप्त सा-हो गया था, और वे श्रीनाथजी के मंदिर का प्रबंध अपने हाथ में ले चुके थे। इसी समय इनका वैष्णवधर्म में दीक्षित होना और सं. १६०२ में अष्टछाप में परिगणित होना उपयुक्त जँच जाता है। विदित होता है कि, चतुर्भुजदास का शिशु अवस्था में श्रीनाथजी की शरण में आना और युवावस्था में श्रीगुसांइजी द्वारा सम्प्रदाय में दीक्षित होना यह दो बातें वार्ता में एक ही रूप में समाविष्ट हो गई हैं।

निष्कर्षतः—सं. १५७५ से ८० के भीतर चतुर्भुजदास का जन्म हुआ और वे पिडरू निवृत्ति के बाद जन्म के ४१ वें दिन कुंभनदासजी द्वारा श्रीनाथजी के आगे शरण आए। वल्लभाचार्य के तिरोधानान्तर श्रीगुसाँईजी के व्रज में आने पर (सं. कल्पद्रुम के अनुसार सं. १५९७ में) चतुर्भुजदास को वैष्णव धर्म-दीक्षा में आत्मनिवेदन दीक्षा हुई—और काव्यमयी प्रतिभा का उद्गम हो जाने पर सं. १६०२ में 'अष्टछाप' में उनकी प्रतिष्ठा हुई, जब ही इनकी वय २०-२५ वर्ष की थी।

अष्टछाप में समावेश और कारण—

जैसा कि-प्रख्यात है सं. १६०२ में अष्टछाप की स्थापना करते हुए गो. श्री विट्ठलेशप्रभुचरण ने चतुर्भुजदास को भी उसमें स्थान प्रदान किया। 'अष्टसखा' और 'अष्टछाप' यह दो एकार्थवाची शब्द हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार-समकालिक उनके सखाओं की भावना पर* श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के साथ भी सख्यभाव के अभिव्यंजक आठ सखा व्रज में संमिलित हुए। गो. श्रीद्वारकेशजी ने इस मान्यता का इस प्रकार उल्लेख किया है:—

* भागवत (द. स्कं. अ. २२/३१)

" सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानंद जानो,
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामी सुबल बखानो।
अर्जुन कुंभनदास, चत्रभुजदास विशाला,
विष्णुदास सो भोज स्वामि गोविंद श्रीदामाला ॥
'अष्टछाप' आठों सखा 'श्रीद्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुनगान करि निजजन होत सुथान ॥

'अष्टछाप के आठ कवि भक्त सखाओं में सूर, परमानन्द, कुम्भनदास और कृष्णदास यह चार जगद्गुरु श्रीवल्लभ महाप्रभु के और शेष चार—छीतस्वामी, गोविंददास, चतुर्भुजदास और नन्ददास उनके पुत्र साहित्य-संगीतकला-विशारद श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण के शिष्य थे। एतावता प्रथम चार की गणना चौरासी में और बाकी चार 'दोसौ बावन' वैष्णवों के अन्तर्गत हैं।

पुष्टिमार्गीय संयोग-विप्रयोग उभयदलात्मक भक्ति का विकास जगद्-हितार्थ एक क्षेमंकर परिणाम है। श्रीहरि की नामात्मक लीला का सैद्धान्तिक प्रचार श्रीमहाप्रभु का विशेष आयोजन है तो स्वरूपात्मक लीला का क्रिया-मय आयोजन श्रीप्रभुचरण की देन है। एक संयोग के संश्लिष्ट स्वरूप हैं तो दूसरे विप्रयोग के वपुष्मान् आदर्श। और यही कारण है कि—उभय के चार चार शिष्यों के सम्मिलित रूप में अष्टछाप की स्थापना की गई। जैसा कि, इनके पदों और वार्ता के प्रसंगों से विदित होता है। ८४ और २५२ दोनों प्रकार के शिष्यों में यही आठ भक्त वैष्णव ऐसे थे,—जो सख्यभाव की अनुभूति और अभिव्यक्ति में अपनी उपमा नहीं रखते थे। अप्राकृत गुण-भेद से आध्यात्मिकतया इनका विश्लेषण इस रूप में करने का साहस किया जा सकता है*।

(क) संयोगात्मक सख्यभक्ति में :—

(१) सूरदास—निर्गुण (गुणातीत) सखा भक्त.	श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य
(२) परमानन्ददास—सात्विक सखा भक्त.	
(३) कुंभनदास—राजस सखा भक्त.	
(४) कृष्णदास—तामस सखा भक्त..	

* किसी अन्य लेख में वार्ता के प्रसंगों और पदों के आधार पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

(ख) वियोगात्मक सख्यभक्ति में :—

(५) नन्ददास—निर्गुण (गुणातीत) सखा भक्त	श्री विट्ठलेश के शिष्य
(६) गोविन्ददास—सात्त्विक सखा भक्त	
(७) चतुर्भुजदास—राजस सखा भक्त	
(८) छीतस्वामी—तामस सखा भक्त	

चतुर्भुजदास का जहाँ तक अष्टछाप से सम्बन्ध है, श्रीगोवर्द्धननाथजी के साथ उनके विनोदात्मक उल्लिखित दो चार प्रसंगों से उनकी सखाभक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है।

अष्टछाप में समावेश के लिये नवविधा भक्ति के अन्तर्गत सख्य भाव की अपेक्षा होती है। सख्य भावाभिव्यक्ति में काव्यमयी पदरचना और संगीत साधना की विशेष कारणता है तो तदर्थ सत्संग, शिक्षा एवं अनुभव की परिपक्वता भी उपादेय होती है—जो कम से कम कैशोर और तारुण्य की संधि में संभव है।

आत्मनिवेदन के समय चतुर्भुजदास की हावभाव चेष्टा से श्रीप्रभुचरण गुसांईजी को अत्यधिक आल्हाद हुआ और उन्होने कुम्भनदास को सम्बोधित कर कहा :—" या पुत्र सो तुम कों बहोत ही सुख होयगो। तुम्हारे मन में जैसो मनोरथ है सोई सिद्ध होयगो।"

आगे चल कर विट्ठलेश प्रभुचरण का यह आशीर्वचन सफल हुआ—और जहाँ चतुर्भुजदास परम भगवदीय वैष्णव हुए वहाँ वे 'परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः' के प्रत्यक्ष उदाहरण भी सिद्ध हुए। कुंभनदास को उनसे जो सन्तोष हुआ—वह अन्य किसी सन्तान से नहीं। वे कृष्णदास और चतुर्भुजदास रूप डेढ़ पुत्र को पाकर कृतकृत्य हो प्रभु को धन्यवाद देने लगे।

पितृ—शिक्षा, भगवद्भक्तिमय संगीतात्मक चतुर्दिक् वातावरण, अहर्निश भगवत्प्रसंग—चर्चा, साधु—समागम, श्रीनाथजी की नित्य नवीन सेवा—प्रणाली एवं विविध मनोरथों के दर्शनोपरान्त श्रीप्रभुचरण के उपदेशामृत ने संस्कारी

बालक चतुर्भुजदास पर जो प्रभाव डाला था वह उनके लिये अमृतकल्प हो गया। स्वल्प वय में ही उन्होंने जो वीतरागिता, भक्ति-प्रवणता एवं लीला-सम्बन्धी तन्मयता अधिगत की वह बहुत कम अन्यत्र दृष्टिगोचर होती है। वे तपे हुए रससिद्ध लीला-प्रवीण भक्त सिद्ध हुए।

अष्टछाप के अन्य महानुभावी कविभक्तों की परमानन्द-दायिनी, संगीत लहरी देवरति—विषयिणी काव्यधारा, सदाचार-साधना से चतुर्भुजदास में एक ज्योतिर्मयी आभा प्रकट हुई जिससे स्वल्प वय होने पर भी उन्हें अष्टछाप में स्थान मिल सका-ये श्रीगोवर्द्धननाथजी के शृंगार के समय कीर्तन-सेवा के अन्यतम कीर्तनिया नियुक्त किये गए।

पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना और रहस्यलीला-चिन्तना में अपने पिता कुम्भनदासजी का सत्संग पाना इनका नित्यनियम था। पितापुत्र दोनों नित्य नई पद रचना कर प्रभुचरित्र-गुणगान और कथा में लीन रहते थे।

प्रस्तुत विषयक वार्ता के एक प्रसंग में कहा गया है :—

"और (एक समै) कुंभनदास और चतुर्भुजदास (जमनावता गाममें) अपने घर बैठे हते। सो अर्द्ध रात्रि के समै श्रीनाथजी के (मंदिर में) दीवा वरत देखे। तब कुंभनदास ने चतुर्भुजदास कों सुनाइ के कह्यो, जो :—

'वे देखि बरत झरोखें दीपकु हरि पौढे ऊंची चित्रसारी' [कुंभनदास प. सं. २९९]

इतनो कहिके चुप करि रहे। सो यह सुनिके चतुर्भुजदास ने कह्यो जो :—

"सुंदर वदन निहारन कारन राख्यौ है बहुत जतन करि प्यारी"

यह सुनिके कुंभनदास ने चत्रुभुजदास सों पूंछी-जो या लीलाकौ अनुभव तोकों भयों? तब चतुर्भुजदास ने कह्यो जो — श्रीगुसाँईजी की कृपा तें श्रीमहाप्रभुजी की कानि तें (यह लीला कौ अनुभव) श्रीनाथजी कृपा करिके जनाए हैं। तब कुंभनदास यह सुनि के बोहोत प्रसन्न भए"*

प्रस्तुत निदर्शन से चतुर्भुजदास की बाल्यकालीन काव्यशक्ति का सहज ही पता लग सकता है। विदित होता है कि, भगवल्लीलानुसन्धान में इन पर गुरुचरण श्रीगुसांइजी का प्रसाद पूर्णरूपेण प्रतिफलित हुआ था।

* अष्टछाप – चतुर्भुजदास की वार्ता पत्र ४७४ [कांक. प्रका.]

चतुर्भुजदास अपने पिता के समान ही त्यागीविरागी थे। यद्यपि विवाह जैसी गृहस्थी की झंझट इन्हें अभीष्ट नहीं थी, तथापि लोगों के आग्रह और सर्वोपरि भगवदाज्ञा से इन्हें परिणय करना पडा। राघवदास नामक इनके एक पुत्र हुआ- जो स्वयं अनुभवी भक्त और कवि था*। इनकी 'धमार' प्रसिद्ध है।

कुछ समय के बाद पत्नी के देहान्त से मरणाशौच के कारण चतुर्भुजदास को श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन-सेवा से वंचित होना पडा। पत्नी-वियोग की अपेक्षा प्रभु-वियोग में इन्हें जो शतशः अगणित मनस्ताप हुआ उसने इनकी हृदय की कोमल भावना पर आघात कर विप्रयोगावस्था के अनुभवजन्य विरह के पद गाने के लिए इन्हें विवश कर दिया। 'भोर भांवतो गिरिधर देखो' (पद सं. ३५२), 'श्यामसुंदर प्रान पियारे छिनु जिनि होहु निन्यारे' (पद सं. ३५१), गोपाल कौ मुखारविन्द जिय में विचारों' (पद सं. १८३) आदि पद समय की उनकी रचनाए हैं, जो हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श करती है। ×

इसी प्रकार श्रीनाथजी के (सं. १६२३ में) मथुरा पधार जाने पर मंदिर में उनके दर्शन न होने पर भी चतुर्भुजदास ने 'बालहि लग की कासों कहिए' (पद सं. २४४), 'गोवर्द्धनवासी सांवरे लाल तुम बिन रह्यौ न जाइ' (पद सं. २४६), 'तबतें जुग समान पलु जान' (पद सं. २४२)+ आदि पदों में उत्कण्ठा-मिश्रित विरहानुभूति का जो प्रत्यक्ष दर्शन कराया है, वह रससिद्ध कवि के सिवाय अन्य की सामर्थ्य के बाहर है। 'भगवत्सानुख्य' ही चतुर्भुजदास का जीवनलक्ष्य था। वे उसके बिना तिलमिला उठते थे।

पत्नी के गत हो जाने पर चतुर्भुजदास एकाकी विगतस्पृह उडे उडे-से रहने लगे। लौकिक जीवन की विरस बिधुर अवस्था उन्हें तो नहीं, पर उनके परमसखा श्रीगोवर्द्धननाथजी को अवश्य खटकी और दो-चार बार आज्ञा देकर उन्होंने सदू पांडे के द्वारा एक मुकद्दम की विधवा पुत्री के साथ चतुर्भुजदास का 'घरेजा' करवा दिया। श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्रसन्नता को

* दोसौ बावन वै. वार्ता सं. २३४ पर इनकी वार्ता प्रसिद्ध है।

× अष्टछाप — चतुर्भुजदास वार्ता [कांक. प्रका.] पत्र ४९२

+ अष्टछाप चतुर्भुजदास वार्ता (कांक. प्रका.) पत्र ४९९

प्राथमिकता देकर उन्मुक्त हो जाने पर भी चतुर्भुजदास गृहस्थी के बन्धन में पुन: बंध गए। इस प्रकार उन्होंने ' स्व-तन्त्र ' का ' पर- (उत्कृष्ट) तन्त्र ' में विलय कर दिया।

इस प्रसंग को लेकर सख्यभाव में उनके साथ श्रीगोवर्द्धननाथजी हास्य-विनोद करते थे। वार्ता में लिखा है :—

" ता पाछे श्रीनाथजी चतुर्भुजदास की नितप्रति हाँसी करन लागे। जो – (यह) देखो, कुंभनदास सारिखे भगवदी कौ बेटा होइ के स्त्री मरि गई तासों (दोइ चार महिनाहू) न रह्यो गयो (सो तुरत) धरेजा कियो। सो या भाँति सों चतुर्भुजदास की हाँसी (श्री गोवर्द्धननाथजी) नित प्रति सखान सों करते। तब चतुर्भुजदास कों सुनि के लज्जा आवती। ऐसे करत एक दिन श्रीनाथजीने चतुर्भुजदास सों कही – देखे चतुर्भुजदासने काम के बस परि धरेजा कियो, परन्तु याके मन में संतोष न भयो। तब यह वचन चतुर्भुजदास पे सह्यो न गयो। तब चतुर्भुजदासने श्रीनाथजी सों कह्यो जो – मोकों तो तुम नित्य ही ऐसें कहत हो परन्तु आपहू तो व्रजवासीन के घर – घर डोलत हो। तब यह सुनि के श्रीनाथजी लज्जा पाए "*

इस प्रकार के कई मधुर उदाहरण चतुर्भुजदास के जीवन के अनुपम दृष्टिकोण हैं, जिनसे इनकी सख्यभक्ति का पता चलता है।

जैसा कि, प्रथम कहा जा चुका है– चतुर्भुजदास ने समय समय पर विविध लीला, उत्सव, भावना के पदों की रचना कर अपनी काव्य–प्रतिभा को पूर्णता कर लोक में धन्य हो गए। पृथक् किसी ग्रन्थ का उन्होंने निर्माण नहीं किया। यों तो सभी विषयों में चतुर्भुजदास की तलस्पर्शी प्रतिभा है। जीवन में विप्रयोग का कई बार अनुभव होने के परिणाम–स्वरूप उनके विरह के पदों में हृदय की जिस टीस का अनुभव होता है वह अनुपम है। ऐसे पद मर्म को छुए बिना नहीं रहते।

स्वकीय गुरुचरण श्रीविट्ठलनाथजी और आराध्यदेव श्रीनाथजी में चतुर्भुजदास को एकात्मभाव के दर्शन होते थे। प्रभुचरण का वियोग उनके जीवन की एक ऐसी रिक्तता थी, ऐसे अभाव का साक्षात्कार था, जिसकी

* अष्टछाप वार्ता – चतुर्भुजदास [कांक. प्रका. पत्र ४९५]

पूर्ति असंभव थी। ज्योंही (सं. १६४२ फा. कृ. ७) के दिन श्रीगुसांइजी के इहलीला-तिरोधान का उन्हें पता लगा, वे विरह-निमग्न हो गए। विषम विरह वेदनोत्पादक इस वृत्त को सुन कर वे 'आन्यौर' गाम से श्रीगोवर्द्धन आए। श्रीनाथजी के दर्शनोपरान्त उन्होंने कुछ विरह पद गाते हुए अप नी मानसिक वेदना को साकारता प्रदान कर तल्लीनता प्राप्त की।

इस समय अन्तर्गत विरहभाव – द्योतक जो पद उनके मुख से निकले, वार्ता के अनुसार उनकी प्रतीकें इस प्रकार हैं :—

(१) फिरि व्रज बसहु श्रीविट्ठलेस (पद सं. ६२)

(२) श्रीविट्ठलनाथ सौ प्रभु भयों न ह्वै है (पद सं. ६३)

द्वितीय पद का अन्तिम चरण :—"श्रीवल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोउ तपै है; 'चत्रुभुजदास' आस इतनी जो उहि सुमिरनु जनमु सिरै है" के उच्चारण के साथ ही रुद्रकुंड पर इमली वृक्ष के नीचे उनकी इह-लीला समाप्त हो गई। वे दिव्य यशःकलेवर पाकर भगवत्सख्य-भाव का साक्षात् अनुभव करने में जागरूक हो गए। 'अष्टछाप' से उनमें और उनसे अष्टछाप में ऐसी परिपूर्णता आई-जो हिन्दी साहित्य की अमर अप्रतीक निधि बनकर आज भी आदरणीय हो रही है। शम्

विजया १०
संवत् २०१४

प्रो० कण्ठमणि शास्त्री
संचालक-विद्याविभाग,
कांकरोली (राज.)

विषयानुक्रम

विषय	पद संख्या
(२५) हिंडोरा	११७-१३१
(२६) पवित्रा	१३२-१३३
(२७) राखी	१३४-१३५

(ख) लीला पद (१३६ से ३५०)

" चतुर्भुजदास "

वर्षोत्सव

*

मंगलाचरण–

१

[कल्यान

जयति जयति श्रीगोवर्द्धन–उद्धरन–धीरे ।
वृष्टि–टूटन करन व्रज–कुल मैं हरन–
देवपति–गर्व, साँवल सरीरे ॥
जयति वारिज वदन, रूप लावनि–सदन
सिर सिखंड, कटि पट जु पीरे ।
मुरली कल गान, व्रज जुवति मन आकरन
संग वहत सुभग जमुना–तीरे ॥
जयति रस रास सो विलास वृन्दाविपिन
कलिय सुख–पुंज मय मलय समीरे ॥
' चत्रुभुजदास ' गोपाल नट–भेष सोई
राधिका कंठ सब गुन गँभीरे ॥

जन्म–समय–

२

[देवगंधार

नैन भरि देखहु नंदकुमार ।
जसोमति कूख चंद्रमा प्रगट्यो या ब्रज कौ उजियार ॥

बन जिनि जाइ आज कोउ गोसुत औरु गांइ ग्वारु ।
अपनें अपनें भेष सबै धरि लावहु बिबिध सिंगारु ॥

हरद दूब अच्छित दधि कुंकुम मंडित करहु द्वार ।
पूरहु चौक बिबिध मुगतामनि गावहु मंगलचारु ॥

करत वेद धुनि सबै महामुनि होत नच्छित्र बिचारु ।
ऊग्यौ पुन्य को पुंज सांवरौ सकल सिद्धि दातारु ॥

गोकुलबधू निरखि आनंदित सुंदरता की सारु ।
'दास चत्रभुज' प्रभु चिरजीवहु गिरिधर प्रान आधार ॥

३

[सारंग

आजु बधाई माँगत ग्वाल ।
बाजत तूर होत कौतूहल प्रगटे मदन गोपाल ॥
गृह–गृह तें सब आवतिं गावतिं भरि–भरि मोतिनि थार ॥
कंचन कलस चरचि केसरि के, बाँधतिं वंदनवार ॥
'चत्रभुजदास' पावै न्यौछावरि उर गज मोतिनि हार ॥

४

[मलार

नंद-घर होत बधाई आज ।
जसोमति जनम-पत्रिका पाई भक्तनि कौ सुखराज ॥
गोपीग्वाल करत कौतूहल निरखत नंद कुमार ।
कनक-थार लियें ब्रज-सुंदरी गावति मंगलचार ॥
नंद जु दान दियो बहुबिधि सों सरे विप्रनि के काज ।
'चत्रुभुज' प्रभु कौ मुख निरखत ही वृष्टि करत सुरराज ॥

५

[धनाश्री

प्रथम प्रनाम ब्रज सीस असीस लीजै जु ।
किये परम उपकार बधैयाँ दीजै जु ॥
पुत्र तिहारे कौ हौं गाहक भूत भविस वर्तमान ।
जब-जब औसर आइ रहूँ फुनि द्वार न जाँचों आन ॥
सोते में सपनौ पायो मैं देख्यो अद्भुत रूप ।
जदुकुल-तिलक प्रगट प्रभु गोकुल, नंद-महरि घर पूत ॥
वदि भादौं आयो जुग द्वापर अर्ध राति बुधवार ।
बालव करन[1] अरु नछित्र रोहिनी जनमे जगदाधार ॥
द्वादस लगुन सुभग नवग्रह उदित आपत मित देखि ।
आगम सुगम प्रमान कर गर्ग लिखी जन मन जु लेखि ॥

---

१ कैल वचन (पाठ) ? है

जिन जान्यो मानस बलि भैया देवन हो कौ देव।
कौन पुन्य अहीर अपरिमित पूरव कर्मनि खेव।

गोप वधू घर-घर तें आवें लै लै मंगल साज।
कुसुम बँधावौ कुखि महरि की कनक पुरुष व्रजराज॥

हय, गज, धेनु, अरथ, अंबर, धन दोन्हे धन भंडार।
मैं ढाढी न अघाऊँ कबहूँ नंद जदपि दातार॥

तब हँसि कह्यो नृपति गोकुल के कहा जाचक मन कीन्ह।
हारत हाथ ब नाहीं न करिहैं संक न सरबसु दीन्ह॥

जग में या ढिंग जाइ रह्यो जो परदा की रहे ओट।
हिय नारी व हेरत जहाँ तहाँ करि आऊँ तन लोट।

धनि जीयो सुखराज पुन्य तिहि जनमन-पूरन आस।
जनम-जनम गुन गावहीं हरि वारत 'चत्रभुजदास' बधैयाँ दीजेजु॥

६

[कानरा

रावल[1] के कहें गोप, आज व्रज दूनी ओप।
काननि दै दै सुनौ बाजे गोकुल में मँदिलरा॥

जसोदा कें सुत जायो, वृषभानु सचु पायो।
जहाँ तहाँ लै लै धाए दूध-दधि-गगरा॥

आगे गोप वृंद वर पाछें त्रीय मनोहर
चल निकसे कोउ पावत न डगरा।

---

१ रावरे

'चत्रभुज' प्रभु गिरिधारी कौ जनमु भयौ
फूल्यो फूल्यो फिरै जहाँ नारद–सो भँवरा* ॥

७

[काफी

हौं ढाढिनि व्रजराज की व्रज तें आई हो ।
सुनि जायो जसोमति पूत सु धाम तें धाई हो ॥

सुंदर रूप अनूप सबै मन भाई हो ।
मानों इंद्र अखारे तें आपु पठाई हो ॥

मंदिर में लई जहाँ नंदरानी हो ।
सीस नवाइ असीस दै बंस बखानी हो ॥

बाजत ताल मृदंग उपंग जु बाँसुरी ।
अंबुज नैन बिसाल सु गावत बाँसुरी ॥

निर्तत ताथेइ ताथेइ लियें गति गोहनी ।
नंद के आँगन में मानों निर्तत मोहिनी ॥

रीझि जसोमति रानी सबै बिधि सुंदरी ।
दिये कुंडल हार दई कर मुंदरी ॥

दीनी नई नकबेसरि बेंदी जराउ की ।
दीनी है कंचन जेहरि पंकज पांउ की ॥

दीन्ही है सारी सोंधें भींजी कंचुकी नेह की ।
कीन्ही है मालिनि ढाल सुढाढिनि गेह की ॥

ढाढी गयंद लदाइ चल्यो चित चाडिलौ ।
चिर जीयो 'चत्रभुज' कौ प्रभु गिरिधर लाडिलौ ॥

पलना—

८

[रामकली

अपनें बाल गोपाल रानी पालनें झुलावै ।
बारंबार निहारि कमलमुख प्रमुदित मंगल गावै ॥
लटकन भाल भृकुटि मसि बिंदुका कठुला कंठ सुहावै ।
देखि देखि मुसिकाइ साँवरौ, द्वै दँतियाँ दरसावै ॥
कबहुँक सुरंग खिलौनां लै लै नाना भाँति खिलावै ।
सद्य माखन मधु सानि अधिक रुचि अंगुरिनि कै कै चखावै ॥
सादर कुमुद चकोर जु नैननि रूप सुधा रस प्यावै ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधनचंद कौं हँसि हँसि कंठ लगावै ॥

९

[रामकली

साँवरौ सुख पलना झूलै ।
निरखि निरखि जसोमति मन फूलै ॥
नैन बिसाल भृकुटि मसि राजै ।
निरखि बदन उडुपति अति लाजै ॥
कठुला कंठ रुचिर पोंहोंची कर ।
सुभग कपोल नाक बिंबाधर ॥
भाल तिलक लट लटकनु सोहै ।
मंद हँसनि सबकौ मनु मोहै ॥

माँखन मिसरी मेलि चखावति।
बार बार प्रमुदित उर लावति॥
गिरिधर कुँवर जननि दुलरावै।
'चत्रुभुजदास' बिमल जसु गावै॥

१०

[रामकली

झूलौ पालनें गोबिंद।
दधि मथों नवनीत काढों तुमकों आनँदकंद॥
कंठ कठुला ललित लटकन भ्रकुटि मन कौ फंद।
निरखि छबि छिनु छिनु झुलाऊँ गाऊँ लीला छंद॥
द्वै दूध की दँतियाँ सुख की निधि हँसत जबै कछु मंद।
'चत्रुभुज' प्रभु जननी बलि गिरिधरन गोकुलचंद॥

११

पालना झूलत सुंदर स्याम।
रतन जटित कंचन कौ पलना झुलवत हैं व्रजबाम॥
गजमोतिनि के झूमका बाँधे मोहें कोटिन काम।
'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधरनलाल के चरन
कमल बिसराम॥

१२

[धनाश्री

ललित ललाट लट लटकनु लटकनु
लाडिले ललन कों लडावै लोल लल्ना ॥
प्रान प्यारे प्रीति प्रतिपालति परम रुचि
पल पल पेखति पौढाइ प्रेम पलना ॥
दरपनु देखि देखि दँतियाँ द्वै दूध की
दिखावति है दामिनी सी दामोदर दुख दलना ॥
सरोज सो सलोनौ सिसु स्यामघन से जलधर
'चत्रभुजदास' बिनु देखे परै कल ना ॥

छठी—

१३

[सारंग

आजु छठी छबीले लाल की ।
उबटि न्हवाइ भूषन बसन दिए सुंदर स्याम तमाल की ॥
केसर चंदन आरति बारति मोहन मदनगोपाल की ।
'चत्रभुज' प्रभु सुखसिंधु बढावत गिरि गोवर्धनलाल की ॥

राधाष्टमी [बधाई]

१४

[सारंग

आनँद भवन वृषभान कें ।
जाई सुता माई कीरति घर ऐसी कुँवरि नहिं आन कें ॥
नहिं कमला, नहिं सची, नहीं रति सुंदर रूप समान कें ।
'चत्रभुज' प्रभु हुलसीं ब्रज बनिता राधा मोहन जानिकें ॥

१५

[मालश्री

आजु महामंगल निधि माई ।
मनमोहन आनँदनिधि प्रगटी श्रीराधा सुखदाई ॥
सब स्रुतियन की संपति आई ब्रज जुवती मन भाई ।
हरषि हरषि नाचत सब व्रजजन बाँटत विविध बधाई ॥
पंच सबद बाजे बाजत धुनि दिसनि दिसनि हरि छाई ।
नंद जसोमति सब सुख राच्यो फूले कुँवर कन्हाई ॥
सुरविमान छायो नभ जै जै कुसुमावलि बरसाई ।
'चत्रभुजदास' लाल मन बांछित फल परिपूरनताई ॥

१६

[मारू

हो ! बृषभानु बधाई दीजै ।
जाचक जन की बिदा भई, इक ठाडो ढाढी छीजै ॥
कुँवरी जनम तिहारें सुनिकें हौं उठि धायो बेग ।
कोटि कलप लौं कौ छल छूट्यो, गयो आजु उद्वेग ॥
बैरी विरह बहुत दुख दीनों कीनों छाती छेग ।
तातें मदमात्यो नहिं हार्यो पर्यो जु तेरी तेग ॥
यह अब सिव विरंचि नहिं जानत मानत अमर अथाईं ।
चंद सूरज नटवा ज्यों नाचत पंचम दहे की माई ॥

उपमा नाहिं करी कोउ करता का सों कहौं समताई ।
कौन पुन्य गिरिधर ताके बस, तिहारें सुता कहाई ॥

धेनु धान धन अंबर दाता गोपनि में बड भाग ।
जो संबंध रच्यो मन ही मन अपनौ सो अनुराग ॥

दै जु सकोगे टरी कछु नहीं बात बनाऊँ ताग ।
राचों नहीं कनक मुक्ता नग लैहों कछु मो लाग ॥

हरषि कहति महरि मुसिकानी जो चाहौ सो लीजै ।
देत असीस धनि यह जीयो दे करि प्रान पतीजै ॥

दुलही दूल्है नंद घर ढोटा ब्याह बडे करि लीजै ।
मंडप चौंरी मंगल गावत दास 'चत्रुभुज' जीजै ॥

१७

[देवगंधार

रावलि राधा प्रगट भई ।
श्रीवृषभान गोप गरुवे कुल प्रगटी अति आनंद भई ॥

रूपरासि रसरासि रसिकिनी नव अंकुर अनुराग नई ।
चिरजीवहु चतुर चिंतामनि प्रगटी जोरी अति पुन्यमई ॥

गुननिधान अति रूप नागरी[1] करत ध्यान गिरिधरन सही ।
'चत्रुभुज' प्रभु अद्भुत यह जोरी सुंदर त्रिभुवन
सोभा नहिं जात कही ॥

---

१ रसिकिनी.

१८

[मालश्री

सब मिलि मंगल गावौ ।
श्रीवृषभान उदार विदित जग ताके सदन बधावौ ॥
बंदौं चरन महरि कीरति के संपति बहुत लुटावौ ।
'चत्रुभुज'प्रभु हित रूप स्वामिनी निरखत नैन सिरावौ ॥

दान–प्रसंग–

१९

[देवगंधार

मटुकी मेरी मोहनु दीजै ।
जो कछु दधि चाखन चाहत हो तौ रंच पात करि लीजै ॥
ऊने आइ घन अटके भोर ही तें बन तन नौतन सारी भीजै ।
रंगु बहै संग जैहै, निपट अवार व्है है कहा कहिए घर कौ कोऊ खीजै ॥
'चत्रुभुज'प्रभु काल्हि आइहौं सबारी बार,
कहौं निरधार साँची बात पतीजै ।
गिरिधरलाल भयो प्रगट दान तुम्हारी नाहीं कोऊ व्रज
आन आजु अति हठु न कीजे ॥

२०

[देवगंधार

कहो किनि कीनों दान दही कौ ।
सदा सर्वदा बेचति इहिं व्रज है मारग नित ही कौ ॥

भाजन हीन समेट सिरनि तें लेत छीनि सब ही कौ।
बहुर्‌यौं कबहूँ भयो न देख्यो नयो न्याउ अब ही कौ॥
कमल नैन मुसक्याइ मंद हँसि अंचर पकर्‌यो जब ही कौ।
दास 'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर मनु चोरि लियो तब ही कौ॥

२१

[सारंग

सबारें ह्याँ ई आइहौं।
बाबा की सौं अबहि जाइ घर दधि भली विधि जमाइहौं॥
रुचि दाइक गोपाल हि लाइक नीकी जुगति बनाइहौं।
भरि मटुकिया कनक की सिर धरि स्यामसुंदर कों ल्याइहौं॥
होति अबार 'चत्रभुज' प्रभु मोहि बहुरि घोष कब जाइहौं।
गिरिधरलाल सकुच तें अंचर नाहिंन सकति छिडाइहौं॥

२२

[सारंग

बलि गई नंद के लला।
दूरि जाति सब सखी संग की छाडि देहु अंचला॥
जान देहु घर लाइहौं काल्हि भोर भरी मटुला।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन अबारी बन क्यों रहै अकेली अबला॥

२३

[नटनारायण

दान माँगत ही में आन कछु कियो।
आइ गहि मटुकिया धाइ लई सीस तें

रसिक वर नंदसुत रंच दधि पियो ॥

भूलि गयो झगरौ हठु मंद मुसकानि में
जबहि कर कमल सों परस्यो मेरौ हियो ।

'चत्रभुजदास' नैननि सों नैना मिले
तबहिं गिरिराजधर चोरि चितु लियो

२४

[गौरी

आजु सखी तोहिं लागी इहै रट ।
गोविंद लेहु लेहु कोउ गोविंद कहति फिरति बन में घट औघट ॥
दधि कौ नांउ बिसरि गयो देखत स्याम सुंदर ओढे सुभग पीतपट ।
माँगत दान ठगौरी मेली 'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नागर नट ॥

२५

[बिलावल

काहू की तू न मानें नाहीं कौन कौ है छोरा ?
आइ झपटिके गागरि पटकी मेरी,
सुरख चुनरिया भिंजोई तेरौ भींज्यो पिछोरा ॥
ऐसी विद्या कौन सिखाई
नित इठलात करो प्यारी सों निहोरा ।
कपटी छली महारस भोगी
जानत बड सर वोरा ॥

ले कर बसन धरत अपने कर
कदम चढी इक ठोरा ।
'दास चत्रुभुज' प्रभु की लीला
माँगत पदरज मूर दोउ कर जोरा ॥

२६

[धनाश्री

छाँडि देहु यह बानि प्यारे कमल नयन मनमोहना ।
आवत जात सदा रही कबहुँ न देखी रीति ।
अनहोनी स्रवननि सुनी कैसे होइ प्रतीति ॥
गिरिघटिया उठि भोर ही मारग रोकत आइ ।
बहुरि अचानक सीस तें मटुकी देत ढुराइ ॥
ऐसी तुमहि न बूझिए अटकि रहत गहि बाँहि ।
मात पिता भैया सुनें साँझ परत बन माँहि ॥
हँसत ही में मन मुसत हो कहि कहि मीठे बोल ।
सेंत मेंत क्यों पाइए यह गोरस निरमोल ॥
'चत्रुभुज' प्रभु चित करषियो चितवन नैन बिसाल ।
रति जोरी मिस दान के गिरि गोवर्धनलाल ॥

२७

[आसावरी

दूरि तें आवत देखे दानघाटि
घिरि रहे दुरि रहे दुहुँ ओर सिला की सहाई ।

जब ही छत्र नीकौ आंई फूलन भरो
दधि की वौरी नी
सो ऐसे में औंचका आइ सबै झुकाई ॥

स्यामा रंग रंग नारी नैन हैं कुरंगिनी
री रही है ठठके आग्यो लयो लली ताँई।
कीन्हो है बत कहाउ कहा हो कहत स्याम
हमें काम, जान देहु
ऐसी अब ही तें क्यों करत बरिआई ॥

इतकों सुबल उत तोष पाछें श्रीदामा
राखे हैं नाकेन परभारि आँखि बाँई।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन रसिक वर
कर गहें कर लयो है छिडाइ बेनु वेत्र लपटाई ॥

दशहरा—

२८

[नट

आजु दसहरा सुभ दिन आयो।
स्यामसुंदर सिर धरें जवारे कुंकुम तिलकु बनायो ॥
कनकथार कर लिएँ आरती ब्रजभामिनि मिलि मंगल गायो।
'चत्रुभुजदास' मुदित नँदरानी गिरिधरलाल लाड लडायो ॥

२९

[सारंग

विजया दसमी सुभ मंगल दिन
धरत जवारे श्री गिरिधारी ।
कुंकुम अक्षत कौ करि टीकौ
हाथन लेत कंचन की थारी ।।
आरति करति देति न्यौछावर
मंगल गावति सब ब्रजनारी ।
देति असीस स्यामसुंदर कों
'चत्रुभुजदास' जाय बलिहारी ।।

३०

[सारंग

जवारे पहिरें श्री गोवर्धननाथ ।
सुंदर मुखनिरखत सुख उपजत ब्रजजन किये सनाथ ।।

स्वेत जरी सिर पाग लटकि रही कलँगी तामें लाल ।
तनसुख कौ वागौ अति राजत कुंडल झलकें रसाल ।।

अंग अंग छबि कहाँ लौ बरनौं नाहिन बरन्यो जात ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर छबि निरखत आनँद उर न समात ।।

रास–

३१

[भैरव

प्यारी ग्रीवाँ भुज मेलि निर्तत पीउ सुजान।

मुदित परस्पर लेत गति में गति

गुनरासि राधे गिरिधरन गुननिधान ॥

सरस मुरलि धुनि मिले मधुर सुर

रास रंग भीने गावें औधर तान बंधान।

'चत्रुभुज' प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि

मोहे खग मृग वन थकित व्योम विमान ॥

३२

[आसावरी

ललित गावत रसिक नंदसुत भामिनी।

सुभग मरकत स्याम मकर कुंडल बाम

कनक रुचि सुचि बसन लजित घन दामिनी ॥

रुचिर कुंज कुटीर तरनितनया तीर

रटत कोकिल कीर सरद ससि जामिनी।

मुखर मधुकर निकर मिले मृदु सप्त सुर

अधर पल्लव कुनित मुरलि अभिरामिनी ॥

लाल गिरिवरधरन मानिनी मनहरन

तोहि बोलत प्रिया हंसकुलगामिनी।

चलहु सत्वर गतिं भजहु 'चत्रुभुज' पतिं

सुंदरी! कुरु रतिं राधिके नामिनी ॥

३३

[मालवगौरा

साजें नटवर-भेख गोपाल ।
मधुर बेनु सु सद्ध उघटत तत्त थेई थेई ताल ॥
तरनि-तनया-तीर मरकत मनि जु स्याम तमाल ।
ब्रज की नारि-समूह मंडल बनी कंचन-माल ॥
रास-रस-गति निरखि उडपति तजी पच्छिम चाल ।
'चत्रुभुज' प्रभु देव-गन-मन हर्‌यो गिरिधरलाल ॥

३४

[मालवगौरा

मदन गोपाल रास-मंडल में मालव राग रस भर्‌यो गावै ।
औधर तान बंधान सप्त सुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै ॥
निर्तत सुलप लेत नूपुर सच बहु विधि हस्तक भेद दिखावै ।
उघटत सद्ध तत्त थेई तत्त थेई जुवति-वृंद मन मोद बढावै ॥
थक्यो चंद मोहे खग मृग गन प्रति छिनु अमित आन गति लावै ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधर नट नागर सुर नर मुनि गति मति बिसरावै ।

३५

[केदारौ

रिझये सखि ! तें साँवरौ सुजान-राइ ।
तान बंधान अनूपम बिधि सों मधुर ताल सुर सुघर गाइ ॥
राखे प्रेम-प्रमोधि प्रानपति गूढ भेद नैननि जनाइ ।
उघटति सद्ध संगीत स्वामिनी निर्तति पग नूपुर बजाइ ॥
रास-रंग-हरि-संग रसु राख्यो अंग-अंग गुन बहुत भाइ ।
'चत्रुभुज' दास प्रभु गोवर्द्धनधर लेत रहसि हँसि कंठ लाइ ॥

३६

[केदारो

अद्भुत नट-भेखु धरें जमुना तट स्याम सुंदर
गुन निधान गिरिवरधर रास-रंगु नाचें ।

जुवति-जूथ संग मिलि गावत केदार रागु
अधर बेनु मधुर-मधुर सप्त सुरनि साँचें ॥

उरप-तिरप लाग-डाट तत-तत-तत-थेई-तथेई-थेई
उघटत सब्दावलि गति भेद कोउ न बाँचें ।

'चत्रभुज' प्रभु बन बिलास, मोहे सब सुर अकास
निरखि थक्यो चंद-रथ हि पच्छिम नहिं खाँचें ॥

दीपमालिका—अन्नकूट—

३७

[सारंग

खेलन कों धौरी अकुलानी ।
डाढ मेलि आतुर सनमुख व्है स्यामसुंदर की सुनि मृदु बानी ॥

बडडे गोप थकित भए ठाढे यह अबलों देखी न कहानी ।
नाचत गाँइ भई ब्रज नौतन बरसों-बरस कुसल यह जानी ॥

नंद-कुमार निवारि झारि मुख जै जै सब्द कहत कल बानी ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल को सदा रहौ ऐसी रजधानी ॥

३८

[सारंग

खेली ब हो खेली गाँग बुलाई धूमरि धौरी ।
बछरा पर उपरैना फेरत डाढ मेलि कें दौरी ।।
आपु गोपाल कूक मारत हैं गोसुत कों भरि कौरी ।
घे घे करत लकुटि कर लीनें मुख सों झारि पिछौरी ।।
आनँद मुदित ग्वाल सब बोलत घेरि करत इकठौरी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर जुग-जुग इह ब्रज राज करौ री ।।

३९

[सारंग

गॉइ खिलायो चाहत गिरिधर बरजत हैं नँदराई ।
धेनु बहुत बाढी है मोहन ! देखि हूक क्यों धाई ।।
राखे हैं रखवार चहूँ दिसि व्रजराजा न पत्याई ।
जसोदा रानी और रोहिनी यह सिख भवन सिखाई ।।
बिना लाल खेलति नहीं धूमरि जब ऐसी सुधि पाई ।
हूँकि-हूँकि कें ऊपर धावति लै लकुटी औ हटाई ।।
हँसि मुसिकाइ स्यामघन सुंदर मुरली मधुर बजाई ।
तब ही 'दास चत्रुभुज' सब मिलि इक इक भलें खिलाई ।।

कानजगाई–

४०

[सारंग

कांन जगावन चले कन्हाई ।
गिरिधर सिंघद्वार ह्वै टेरत सखा–मंडली धाई ।।

बिबिध सिंगार पहरि पट भूषन, प्रफुलित उर आनँद न समाई ।
रुचिर गैल श्रीगोवर्द्धन की खेलत हँसत सुखदाई ॥

टेरत धूमरि गाँग बुलाई, डाढ मेलि आतुर ह्वै धाई ।
सावधान सब भोर खेलन कों 'चत्रुभुजदास' चली सिर नाई ॥

दीपदान–

४१

[सारंग

दीप-दान दै स्याम मनोहर सब गाइनि के कान जगावत ।
गाँग बुलाई धूमरि धौरी ऊँचे लै-लै नाउँ बुलावत ॥

होइ सचेत भोर खेलन कों दौरी आवै नेंकु सुनावत ।
सनमुख जाइ कूक मारत हैं मुख पट फेरि पछोंडे धावत ॥

मुदित गोपाल ग्वाल सुबल लै ताकौ बछरा ताहि मिलावत ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन डाढ सुनि हँसि गावत कर ताल बजावत ॥

हटरी–

४२

[कान्हरो

गिरिधर बैठे हटरी सोहत ।
ब्रज की बाल सबै ले आईं भाँति-भाँति की मेवा तोलत ॥

बहुत भाँति पकवान डला भरि लै-लै रोहिनी जसुमति डोलत ।
भीर भई कहुँ ठौर न पावत लै-लै नाम सबन कौ बोलत ॥

देत मिठाई स्याम अपनें कर पितर रीति कों जानि अमोलत ।
'चत्रुभुजदास' प्रभु स्याम सुंदर वर बरस रह्यौ समय हटरी खोलत ॥

गोवर्द्धनपूजा-

४३

[सारंग

बडडेन कों आगें लै गिरिधर श्रीगोवर्द्धन-पूजन आवत ।
मानसी गंगा न्हवाइ नखसिख तें पाछें दूध धौरी कौ नावत ॥
बहुरि पखारि, अरगजा चर्चित, धूप, दीप, बहु भोग भरावत ।
दै बीरा आरती करत हैं ब्रजभामिनि मिलि मंगल गावत ॥
टेरि ग्वाल भाजन भरि दे कें पीठि थापि सिर-पेच बनावत ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर ब्रज इहिं बिधि जुग-जुग राज करौ मन भावत ॥

४४

[सारंग

नंदादिक जुरि चलि आए जहाँ श्रीगोवर्द्धन पूजन आजु ।
रामकृष्ण दोउ आगें दे कें सीस जु चरन छुवावन काजु ॥

प्रथम आइ परनाम करत
अघ कोटि कलप के तत छिनु भाजु ।

अब निहचें ब्रज बसें सदा हम
सैल रूप प्रगटे सिर ताजु ॥

धेनु खिलावत कुँवर तहाँ यह इततें मृदंग दुंदुभी गाजु ।
होत कुलाहल महामहोच्छव भोग धरयो गिरि सन्मुख साजु ॥

परिक्रम्मा करि बार-बार सब
मुख निरखत है सब ही समाजु ।

आरती करत देत न्यौछावरि
मुदित फिरत हैं गोप समाजु ॥
ए प्रकार सब कीन्हे विधि सों मनोरथ मानि लियो गिरिराजु ।
'चत्रुभुज' प्रभु आए फुनि गृहप्रति कृष्ण सुन्यो मेटी मेरी खाजु ? ॥

४५

[सारंग

गोवर्द्धन पूज्यो गोकुलराइ ।
बल समेत सब सखा चले मिलि खरिक खिलावन गाइ ॥
लै-लै नाउँ टेरि सब सुरभी नियरी लई बुलाइ ।
देत कीक बछरा गहि मोहन पीतांबर हि फिराइ ॥
मेलि डाढ बुलाई धूमरि सन्मुख आई धाइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन निवारत हँसि करतार बजाइ ॥

४६

[सारंग

गोबर्द्धन पूजा करि गोबिंद सब ग्वालनु पहिरावत ।
आउ सुबाहु सुबल श्रीदामा, ऊँचे लै-लै नाउँ बुलावत ॥
अपने हाथ तिलकु करि चंदन अरु अंगनि लपटावत ।
बसन बिचित्र सबनि के माथें बिधि सों बाँधि बनावत ॥
भाजन भरि जु भरी कुँडवारो ताही ताहि पठावत ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर फिरि पाछें धौरी धेनु खिलावत ॥

४७

[सारंग

गोवर्द्धन पूजि सबै रस भीने ।
सहस्र भुजा गिरिधरन दूसरौ जेंवत स्याम सगा सँग लीने ॥
सुनि कें उमगे बिरध बाल सब अगिनित साक पाक घृत कीने ।
जो कोऊ रही सकुच गुरुजन की बाँह पसारि बोलि दै लीने ॥
जै-जैकार होत चहुँ दिसि तें भामिनि मिलि गावति सुर झीने ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन सदा ब्रज राज करौ भक्तनि सुख दीने ॥

गोवर्द्धनोद्धरण–

४८

[सारंग

वारी मेरे कान्ह प्यारे अबहि दिननु बारे
कैसें अति भारौ गिरि राख्यो धरि कर पर ।
कोमल भुजा तुम्हारी, यातें हौं भै भीत भारी,
देखि–देखि करत है हिरदौ इह धर–धर ॥
स्याम महा बल कीनो, छिनु में उठाइ लीनो,
आए गाइ ग्वाल सब सरनि, मेघ के डर ।
नीकौ हौं कहौं उपाइ, मिलि करिहैं सहाइ,
लैहो बोलि बलि गई संग भैया हलधर ॥
नेंक हूँ न बीच पारचो आठ जाम अँधियारौ
बरखत है घन सात दिन एक झर ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधारी ब्रज राखि लियौ
इन्द्र खिसाइ आइ परचो चरननि तर ॥

गोपाष्टमी–

४९

[सारंग

गोविंद चले चरावन गैया ।
दीनो है रिषि आजु भलौ दिन कह्यौ है जसोदा मैया ॥

उबटि न्हवाइ बसन भूषन सजि बिप्रनि देत बधैया ।
करि सिर तिलकु आरती बारति, फुनि-फुनि लेति बलैया ॥

'चत्रुभुजदास' छाक छीके सजि, सखनि सहित बलभैया ।
गिरिधर गवनत देखि अंक भरि मुख चूम्यो व्रजरैया ॥

प्रबोधिनी–

५०

[बिलावल

जागौ मंगल रूप निधान ।
हरि-प्रबोध अति ही दिन नीकौ
मंगल रूप उदय भयो भान ॥

मंगल नंद, जसोदा रानी
मंगल धरत देव मुनि ध्यान ।

' चत्रुभुज ' प्रभु गिरिधरन लाल का
मंगल करत वेद स्रुति गान ॥

८१

[बिलावल

बैठे *कुंज-मंडप में आइ।
रच्यो सवारि सखी ललितादिक;
यह सोभा कछु बरनी न जाइ ॥
दीपमालिका रुचिर बनाई;
घृत परिपूरनताइ ।
धूप दीप करि, फूल माल धरि,
नाना बिंजन सुभग कराइ ॥
गावत मंगल गीत सकल मिलि;
नंद-नँदन पिय देव मनाइ ।
वारि आरती जुगल रूप पर
'चत्रभुजदास' वारनें जाइ ॥

८२

[देवगंधार

बैठे सोभित सुंदर स्याम।
नवल निकुंज मंडप प्यारी सँग
आनँद बीतत चार्यों जाम ॥
सखी चतुर मिलि गान करत हैं,
दीपमालिका करि अभिराम।
मान देव सिर मौर सँवारौ
पहिरावत उर पुहुपन-दाम ॥

*बैठे हरि नवनिकुंज में जाइ

बीतत जाम आरती वारत,
जुगलरूप निरखत सब बाम।
जगमगात नव बसन बिभूषन
मोहन अँग-अँग पूरन काम ॥

श्री वल्लभ निज सदा विराजत
श्रीगिरिधर गोविंद घनस्याम।
बालकृष्ण श्रीरघुपति जदुपति
राज करौ श्री गोकुल धाम ॥

....
....

'चत्रुभुज' प्रभु गिरधर सुखदाइक
पूरे सकल मनोरथ काम ॥

श्रीवल्लभवंशोद्गान–

५३

[भैरव

श्रीवल्लभ-सुजसु संतत नित्य गाऊँ।
मन-क्रम-बचन छिनु एक न बिसराऊँ ॥
पुरुषोत्तम-अवतार सुकृत फल फलित
जगत-बंदन श्रीविट्ठलेस दुलराऊँ।
परसि पद कमल-रज निरखि सौन्दर्य-निधि
प्रेम पुलकित कलह-कोटि नसाऊँ ॥
श्रीगिरिधरन, देवपति-मान-मर्दन करन
घोष-रच्छक सुखद लीला सुनाऊँ।

श्रीगोविंद ग्वाल-संग गाँइ लै चलत बन
रसिक रचना निरखि नैननि सिराऊँ ॥
श्रीबालकृष्ण सदा सहज बालक दसा
कमल लोचन सु हरखित रुचि बढाऊँ ।
भक्ति-मारग सुदृढ करन गुन-रासि ब्रज-
मंगल श्रीगोकुलनाथ हिं लडाऊँ ॥
श्रीरघुनाथ धर्म-धुर-धीर सोभा-सिंधु
रूप लहरिनि दुख दूरि बहाऊँ ।
पतित उद्धरन महाराज श्रीजदुनाथ
बिसद अंबुज हाथ सिरसि परसाऊँ ॥
श्रीघनस्याम अभिराम रूप बरिखा स्वांति-
आस ज्यों रसना चातक रटाऊँ ।
'चत्रुभुजदास' परयौ द्वारे प्रनमति करै
सकल कुल चरनामृत भोर उठि पाऊँ ॥

५४

[देवगंधार

श्रीविट्ठलनाथ गोकुल-भूप ।
भक्त-हित कलिजुग कृपा करि धरे प्रगट स्वरूप ॥
सकल धर्म-धुरंधरन हरि-भक्ति निजु दृढ जूप ।
चरन अंबुज सिरसि परसत सोष कर अंधकूप ॥
आपु ही सेवा सिखावत, सकल रीति अनूप ।
भोग, राग, सिंगार नाना चरचि दीप रु धूप ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन जुग बपु लीला सदा अछूप ।
नंद-नंदन वल्लभ-नंदन एक मन द्वै रूप ॥

५५

[धनाश्री

श्रीविट्ठलनाथ नयन भरि देखे।
पूरन भए मनोरथ सब कछु हुती जु जिय आपेखे ॥
श्रीवल्लभसुत-सरन-बिना पिछले दिन गए अलेखे।
'दास चतुर्भुज' प्रभु सब सुत-निधि रहिए कृपा बिसेखे॥

५६

[सारंग

सेवक की सुख-रासि सदा श्रीबल्लभराज-कुमार।
दरसन ही प्रसन्न होत मन पुरुषोत्तम-अवतार ॥
सुदृष्टि चितै सिद्धांत बतायो, लीला जग बिस्तार।
इह तजि, आन ज्ञान कहँ धावत भूले कुमति बिचार ॥
'चत्रुभुज' प्रभु उद्धरे पतित श्रीबिट्ठल कृपा उदार।
जाके कहत गही भुज दृढ करि गिरधर नंद-दुलार ॥

५७

[सारंग

सदा ब्रज ही में करत बिहार।
तबकें गोप-भेष अबकें प्रगटे द्विजवर-अवतार ॥
तब गोकुल में नंद-सुबन, अब वल्लभराज-कुमार।
आप हि चरचि दिखावत औरनु दृढ मत सेवा सार ॥
जुगल रूप गिरिधरन, श्रीबिट्ठल लीला ए अनुसार।
'चत्रुभुज' प्रभु सुख सैल-निवासी भक्तनु कृपा उदार ॥

५८

[सारंग

श्रीवल्लभ सु प्रताप फलित, लीला-गुन-भाव ललित,
प्रगटे श्रीविट्ठलेस गोकुल सुख-गामी।
नख-सिख सोभा अनूप, कलिजुग उद्धरन भूप,
रूप-सुधा पान करत नैननि ब्रजवासी॥
दीनबंधु कृपा करन, चितवनि त्रै ताप हरन
छिनु-छिनु आनंद कंद अंबुज मुख हासी।
'चत्रभुज' प्रभु जुगल स्वरूप, नंदनंदन गोपनाथ
विहरत एक साथ सदा गिरि गोवर्द्धन बासी॥

५९

[मलार

प्रभुता प्रगट श्रीविट्ठलनाथ की।
आन ज्ञान सब ध्यान बाममत इहे बिधि जगत अकाथ की॥
भक्ति भाव प्रगट्यो इहि मारग कलिजुग सृष्टि सनाथ की।
सरन जात ही *करत कृतारथ, कर गहि सहज अनाथ की॥
'चत्रभुजदास' आस परिपूरित छाया अंबुज हाथ की।
कृपा-विसेष विराजहु निसिदिन जोरी गिरिधर साथ की॥

६०

[नटनारायन

कृपा-सिंधु श्रीबिट्ठलनाथ।
हस्त कमल छाया निस्तारी हुते जु अधम अनाथ॥
बाधा कछु न रही अब तन-मन भए सुदृष्टि सनाथ।
'चत्रभुज' प्रभु तुम सदा बिराजहु श्रीगिरिवरधर-साथ॥

---

* सौंपत स्याम हि कर गहि भुजा

बदन-इंदु तें बिमुख नैन चकोर तपत बिसेस।
सुधा-पान कराइ मेटहु बिरह कौ लव लेस ॥

श्रीवल्लभ-नंदन दुख निकंदन सुनहु सुचित संदेस।
'चत्रुभुज' प्रभु या घोपकुल कौ हरहु सकल कलेस ॥

६३

[मामेरी

श्रीबिट्ठलनाथ-सौ प्रभु भयौ न व्हैहै।
पाछें सुन्यौ न देख्यो आगें इह मच फिरि न बनैहै।
मनुप-देह धरि भक्ति-हेत कलि-काल जनमु को लैहै ?
को फिरि नंदगाइ कौ बसो ब्रज-बासिनु बिलसैहै ?
को कृतज्ञ करुना सेवक-नन कृपा सुदृष्टि चितैहै ?
गाइ ग्वाल संग लै के को फिरि गोकुल गाँउ बसैहै ?
धर्म-थंभ व्है ज्ञान कथन कों, जगत भगति प्रगटैहै ?
को कर कमल सीस धरिकें अधमनि वैकुंठ पठैहै ?
रास बिलास महोच्छत्र रचि को भोग राग सुख देहै ?
को सादर गिरिराजधरन की सेवा सारु हढैहै ?
भूषन बसन गोपाल लाल के कौन सिंगार सिखैहै ?
को आरती वारि श्रीमुख पर आनँद प्रेमु बढैहै ?
को बृंदाबन चंद गोविंदै प्रगट स्वरूप बतैहै ?
का कौ बहुरि प्रताप जु ऐसौ प्रगट पुहुमि सब छैहै ?
का के गुन कीरति लीला जसु सकल लोक चलि जैहै ?
श्रीवल्लभसुत दरसन कारन अब सब कोउ तपैहै।
'चत्रुभुजदास' आज इतनी जो उहि सुमिरनु जनमु सिरैहै।

६४

[पूर्वी

जयति आभीर–नागरी–प्राननाथे ।
जयति व्रजराज–भूषण जसोमति.
ललित देति नवनीत मिश्री सुहाथे ॥

जयति परभात दधि खात श्रीदामा सँग
अखिल गो–धन–वृंद चरत साथे ।
ठौर रमनीक वृंदाविपिन सोहै
स्थल सुंदरी–केलि गुन गूढ गाथे ॥

जयति तरनि तनया–तीर रास–मंडल रच्यौ
तत्त थेई तत्त थेई तत्त था ताथे ।
'चत्रभुजदास' प्रभु गिरिधरन बहुरि
अब प्रगट विट्ठलेस व्रज कियो सनाथे ॥

६५

[पूर्वी

प्रगटे रसिक श्रीविट्ठलराइ ।
भक्तहित अवतार लीनौं बहुरि ब्रज में आइ ॥

सिव ब्रह्मादिक ध्यान धरत हैं, निगम जाकौं गाइ ।
सेस सहस्र मुख रटत रसना जस न बरन्यौ जाइ ॥

पीत पट कटि काछिनी कर मुरली मधुर बजाइ ।
मोर चंद्रिका मुकुट मस्तक, भाल तिलकु बनाइ ॥

मकर कुंडल गंड मंडित देखि मदन लजाइ ।
ग्वालिनी के संग विमलत गम्य मंडल माँइ ॥

अंग-अंग अनंग सुंदर कहा कहौं बनाइ ।
प्रानपति की निरखि सोभा 'चत्रुभुज' बलि जाइ ॥

६६

[देवगंधार

व्रज जन गावत गीत बधाए ।
श्रीविट्ठलनाथ प्रगट पुरुषोत्तम गोकुल गृह जब आए ॥
श्रीगोवर्धन धर सुनि आनंदित अति आतुर उठि धाए ।
मिलत करत औसेर पाछिली नैन नीर ढरि आए ॥
वल्लभनंदन बिरह निकंदन सैल सकल सुख छाए ।
घर-घर आनँद भयो घोष में मौतिन चौक पुराए ॥
धनि दिनु धनि यह पहरु घरी छिनु प्रानजीवन धन पाए ।
धनि यह मंगल रूप नाथ कौ दरसत कलह नसाए ॥
अति आनँद सों भवन-भवन प्रति मुदित निसान बजाए ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु यह मंगल प्रेम के पुंज छवाए ॥

६७

[गंधार

विट्ठलनाथ अनाथ के तारन ।
श्रीवल्लभ-गृह प्रगट रूप यह धरयो भक्त हित कारन ॥
दीनबंधु कृपासिंधु सहज ही भक्त–भक्ति विस्तारन ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु के नित मत चलत लाल गिरिधारन ॥

६८

[केदारो

श्रीविट्ठल [प्रभु] प्रगटे आइ ।
पौष वदी नौमी महा सुभ दिन घरी समुदाइ ॥

ग्वाल गोपी सबै हरखे जहाँ--तहाँ तें उठि धाइ ।
हाथन कंचन थार लिए हैं सरस मधुरे गाँइ ॥

विविध बाजे बजत चहूँ दिसि आनँद उर न समाइ ।
कुसुम बरसत नभ सुरन तें जै-जै सब्द सुहाइ ॥

पूरे मनोरथ भक्त जन के आनँद निधि कों पाइ ।
अन्य दोष जु मिटे जनम के भए मनोरथ भाइ ॥

जात कर्म कराइ श्रीवल्लभ दान विविध दिवाइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन कौ जसु बिविध विधि सों गाइ ॥

वसंत–

६९

[वसंत

केसरि छीट रुचिर बंदन–रज स्याम सुभग तन सोहै ।
बीच-बीच चोवा लपटानो उपमा कों इयाँ को है ॥

इह सुख नव वसंत के औसर राधा नागरि जोहै ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल छबि कोटिक मनमथ मोहै ॥

७०

[वसंत

नव वसंत आगम नव नागरि
नव नागर गिरिधर सँग खेलति ।
चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा,
ताकि-ताकि पिय मनमुख मेलति ॥
पुहुप अंजुरि जब भरत मनोहर
बदन ढाँपि अंचर घन पेलति ॥
'चत्रुभुज' प्रभु रस—रास रसिक कों
रिझै-रिझै सुख—सागर झेलति ॥

७१

[वसंत

मदन गोपाल लाल सब गुन-निधि खेलत बसंत निकुंज देस ।
जुवतीजन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेस ॥
मुकुलित नव द्रुम पल्लव मंडल, कोकिक कल कूजत बिसेस ।
फूली नव मालती मनोहर मधुप गुंजार करत मझेस ॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझि, डफ, आवज, बीना किन्नरेस ।
नृत्तत गुनी अनेक गुन भरे गावत जिय व्है-व्है आवेस ॥
कुमकुम रँग भरि-भरि पिचकाई ताकत नैन रु सीस केस ।
रंग-रंग सोभा अँग-अँग प्रति, निरखि बिरह भाज्यौ बिदेस ॥
जानत नहीं जाम घरी बीतत अति आनंद हृदै प्रबेस ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु सब सुख-निधि गिरिवरधर ब्रज-जुवनरेस ॥

७२

[सारंग

देखि सखी नव बसंत आगम नीके लागत नव फूल पल्लव नए ।
नाना बरन सकल वृंदावन जहाँ तहाँ द्रुम बेलनि मए ॥

प्रगट्यो रति-पति आई सुखद रितु, हेम-काल कलह जु गए ।
गुंजत मधुप, कीर, पिक कूजत, ठौर-ठौर आनंद ठए ॥

जमुना-तट रमनीक परम रुचि कुंज बितान ललित छए ।
तहाँ साजि नटवर नँद-नंदन बैठि रहे तेरे जु लए ॥

जानि सु समय 'चतुर्भुज' प्रभु आतुर संदेस तोकों है दए ।
बेगि चलहि मिलि गिरधर पिय सँग, सब सुख करहि बिलास जए ॥

७३

[ललित

आगम भयौ नई ऋतु कौ सखि
जब तें बिदा भयौ हेमंत ।
विरहिनि के भागन तें सजनी !
आवत है चल्यौ री ! वसंत ॥
मन सिहाय पर तीय भलें भरि
भाँवरि लियो ताहि कौ कंत ।
'चतुर्भुज' प्रभु पिय तारी बजावत
या जाडे कौ आयो अंत ॥

७४

[देवगंधार

आजु हरि होरी खेलन आए ।
मागध लोक सकल सदननि के घर-घर आनँद गाए ॥

सरस वसंत हँमत वृन्दावन ऋतु-प्रभाव जनाए ।
छूटि गई लोक-लाज मरजादा फिरत सबै ही धाए ।

ज्ञान, ध्यान, जप, तप सब बिसरे, आसन मुनिगन छाँडे ।
आगम निगमनि के पंडित सब सिव विरंचि बौराए ॥

शृंग, बेत्र, मुरली, महुवरि धुनि नीके सब्द सुनाए ।
सुनि-सुनि चौंकि परीं नवनागरी सो भेद नहीं जनाए ॥

राधा जू सुंदर वर प्यारी नीकौ मतौ उपायो ।
कुंज महल तें निकसि द्वार व्है मोतिनि चौक पुरायो ।

सकल सुगंधि घोरि कर लीनें सखियनि पास मँगाए ।
चहुँ दिसि तें छूटो पिचकाईं अद्भुत खेल मचाए ॥

चोवा चंदन बूका बंदन अबीर गुलाल उडाए ।
मगन भए डोलत जित-तित हो गिनत न राजा राए ॥

दीनी सैन सखी ललिता कों लालन गहि पकराए ।
हँसी ओट सारी दै सब मिलि तांडव नाच नचाए ॥

पाई बान बात मनमोहन राधा उर लपटाए ।
तिहि औसर वृषभानु-नन्दिनी अधर सुधारस प्याए ॥

बरसत कुसुम करत सुर जै जै मेघ निसान बजाए ।
नीकौ विहार नंद-नंदन कौ 'दास चतुर्भुज' गाए ॥

७५

[वसंत

खेलत वसंत गिरिधरन लाल।
जूथनि जुरि आईं व्रज की बाल॥

कुंकुम भरि भरि भुरकत गुलाल।
लै लपटावत चोवा रसाल॥

चंदन चरचत दुहूँ गाल।
रही पाग ढरकि अरध भाल॥

मुरली धुनि रिझवत गोपाल।
भयो मनमथ लखि आलवाल॥

गोवर्धनधर रसिकराइ।
'चत्रुभुजदास' बलिहारी जाइ॥

७६

[जैतश्री

खेलत फागु संग मिलि दोऊ
आनँद भरि पिय प्यारी हो।
नवल किसोर रसिक नँदनंदन
इत वृषभानु-दुलारी हो॥

नव रितुराज लता द्रुम फूले
वरन वरन छबि न्यारो हो।
गुंजत मधुप कीर पिक कूंजत
स्रवन सुनत सुखकारी हो॥

तैसेइ सुभग गौर साँवल तन
बनी जोट इक सारी हो ।
कमल नैंन पर बूका भेलत
हँसि सकुचति सुकुमारी हो ॥

भरि अरगजा कनक पिचकाई
धाईं सब व्रजनारी हो ।
भरत भाँवते मदन गोपालै
बढ्यौ रंग अति भारी हो ॥

बहुर्यो मिलि दस पाँच सखी
गोविंद भरे अँकवारी हो ।
चोवा चंदन अगर कुंकुमा
दियो सीस तें ढारी हो ॥

प्रेम मगन मोहन मुख निरखत
तन सब दसा बिसारी हो ।
'चतुर्भुज' प्रभु सुर नर मुनि मोहे
गुन-निधान गिरिधारी हो ॥

७७

[नट

खेलत गिरिधरन लाल, परम मुदित ग्वाल बाल,
इत बनी ब्रज नारी नवल, होरी बोलना ॥
गावत नट नारायन रागु, जुवती जन खेलत फागु,
गारी देति गोप कुँवरि करि कलोलना ॥

वीना बेनु तान तरंग, बाजत मधुर मृदंग,
भेरी महुवरि डफ झाँझि ढोलना।
केसरि कुमकुमा सुरंग, पिचकाई भरि भरि तरंग,
ब्रज जुवतीनि छिरकि, मिलि ब्रज टोलना॥
मोहन कों पकरि लेहु, फगुवा मिस फेंट गहु,
मॉडत मुख रोरी घोरि करि कपोलना॥
'चत्रुभुज' प्रभु फगुवा दियो, राधाजू को भायो कियो,
पीतांबर खेंचि लियो करि झँझोरना॥

७८

[वसंत

गावत चली वसंत बँधावन नंदराइ–दरबार।
वानिक बनि चली चोख मोख सों ब्रजजन सब इकसार॥
अँगिया लाल लसत तन सारी झूमक उर नव हार।
बेनी ग्रथति डुलति नितंबिनी कहा कहुँ बडडे बार॥
मृगमद आडी बडेडी अँखियाँ आँजन अंजन पूरि।
प्रफुलित बदन हँसत दुलरावत मोहन जीवन मूरि॥
पद जेहरि, केहरि कटि किंकिनी रह्यौ विथकि सुनि मार।
घोष घोष प्रति गलिन गलिन प्रति बिछुवन के झंकार॥
कंचन कुंभ सीस पर लीनें मदन सिंधु तें भरिकें।
ढाँपे हैं पीत वसननि जतन करि मौर मंजरी धरिकें॥
अबीर गुलाल अरगजा सौंधौ विधि न जाति विस्तारी।
मैन-सैन ज्योंनारि देन कों कमलनि कमलनि थारी॥

बने चीर आभरन सब तन बिबिध सिंगार ।
कंकन अरु किंकिनी उर गज-मोतिन हार ॥

नक बेसरि ताटंक कंठसिरी अनुभाँति ।
चौकी बनी जराइ दूरि करत रवि-कांति ॥

सेंदुर तिलक तँबोल खुटिला बने बिसेख ।
सोहति केसरि-आड कुमकुम काजर रेख ॥

प्रफुलित आनँद भयो चितवत हरिमुख ओर ।
मनु बिधु प्रीतम मिल्यौ सादर चारु चकोर ॥

नैन रूप रस भरे बारंबार निहारि ।
गावहिं झूमकि चेत बीच सुहाई गारि ॥

चोबा चंदन अगर सौंधे सजे अनेक ।
पिचकाँईं कर लिये धाईं एक तें एक ॥

अति भरि बाँधी फेंटि सुरंग अबीर गुलाल ।
दुहुँ दिसि माच्यौ खेल इत गोपी उत ग्वाल ॥

नर नारिन परी चोख छिरकत तकि तकि छेह ।
भरत भई अति भीर मानहुँ बरसत मेह ॥

बरन बरन भए बसन अंगनि रहे लपटाइ ।
क्रीडा रस बस मगन आनँद उर न समाइ ॥

ब्रज-जुवतिनु मतौ मत्यौ मुख न जनावति बैन ।
पकरि नेंकु घनस्याम मिलवति इत उत सैन ॥

जुवति-जूथ दल पेलि दीने सखा भजाइ ।
कहति कहा मतु करहि, अब तो कछु न सुहाइ ॥

कहत न बाँचे कछु बचन गारि अरु गीत ।
झुंडनि जुरि चहुँ ओर जाइ गह्यौ पट पीत ॥
नवल कुँवरि जानियें अब जो मुरली लेहु ।
राधाहि करहु जुहार हमारौ फगुवा देहु ॥

फगुवा देहु न देहु छाँडहु ओर पाइ ।
हमारौ भायो, करहु छूटौ माथौ नाइ ॥

प्यारी पिय सों कह्यौ अति मीठे मृदु बोल ।
काजर आँजे नैन रोरी हरद कपोल ॥

मुख माँडे छबि भई कोटि मदन सिरताज ।
त्रिभुवन सौभग लिए मनों ब्याह आयो आजु ॥

कीरति अविचल रही जुग जुग इहि ब्रजवास ।
श्रीगिरिधर कौ जसु गान नित करहु 'चतुर्भुजदास' ॥

८१

[बिलावल

卐 नंदसुवन ब्रज भाँवते फागु संग मिलि खेलौ जू ।
आजु हमें तुम्हें जानवी जो जुवती दल पेलौ जू ॥
रसिक सिरोमनि साँवरे स्रवन सुनत उठि धाए जू* ।
बलि समेत सब टेरिके घर घर तें सखा बुलाए ॥

卐 सूरसागर (ना. प्र. सभा) परिशिष्ट (१) में यह पद सूरदास की छाप से छपा है, जिसके लिये संपादक को अर्ध संदेह है। देखो सूर-सागर परि. (१) पद १२९ ।

* प्रत्येक तुक के साथ 'जू' का प्रयोग है।

विविध भाँति बाजे बजे ताल मृदंग उपंग।
दुंदुभि डिमडिम झालरी आवज कर मुख चंग ॥
उततें नवसत साजिकें निकसीं सकल ब्रजनारी।
झुंडनि आईं झुमिकें गावति मीठी गारी ॥

केसरि कुमकुम घोरिकें भाजन भरि-भरि लाई।
छूटी सनमुख स्याम के करनि कनक पिचकाँई ॥
उतहिं समाज गोपाल सों भरे महारस खेलें।
चोवा मृगमद सानिके जुवति-जूथ पर मेलें ॥

सोभित बालक वृंद में हरि हलधर की जोरी।
उतहिं चतुर चंद्रावली श्रीराधा गुननिधि गोरी ॥
'सोइ बदों' ललिता कहै, पग न पिछौंडे डारै।
इत नायक उत नायिका को जीतै को हारै ॥

टिके परस्पर देखिये खेल मच्यौ अति भारी।
इत उत अटक न मानहीं चौंक परी नर नारी ॥
जुवति जूथ दल पेलिकें छेकिं सुबल गहि लीनों।
कंठ उपरना मेलिकें खेंचि आप बस कीनों ॥

सुनहु सुबल साँची कहो तो भले पावो।
छलबल बानिक बानिके नेंकु हलधर कों पकरावो ॥
बहुरि सिमटि सब सुंदरी संकरषन मिलि घेरे।
फेंट गही चंद्रावली उलटि सखनि तन हेरे ॥

सौंधे नावें सीस तें एक काजर लै कर आई ।
मोहन मुरि हँसि यों कह्यौ देखो दाऊ आँखि अँजाई ॥
फिरि प्यारी नागरि राधिका तके स्याम जहाँ ठाढे ।
और सखीनि की ओट ह्वै गहे औचकाँ गाढे ॥

देखि सखी चहु ओर तें दौरि आइ लपटानी ।
अंग-अंग बहु रंग सों करति बात मनमानी ॥
केसरि सों पट बोरिके श्रीमुख माँड्यौ रोरी ।
तारी हाथ बजाइ कैं बोलत हो हो होरी ॥

परसि परम सुख ऊपज्यौ भयौ तियन मन भायौ ।
सादर चारु चकोर ज्यों मनु विधु पोतम पायौ ॥
नागरि अति अनुराग सों मुदित बरन तन हेरै ।
सर्वसु वारै वारनें इक अंचल हरि पर फेरै ॥

मगन भईं ब्रज-सुंदरी नव रस भीज्यों हियौ ।
उत अग्रज इत स्याम पै दुहुँ दिसि फगुवा लियौ ॥
चत्रुभुज ' प्रभु संग खेलहीं इहि विधि गोपकुमारी ।
सब ब्रज छायो प्रेम सों सुख-सागर गिरिधारी ॥

८२

[बसंत

प्रथम बसंत पंचमी पूजत
कनक कलस कामिनी उर फूले ।
आयो मदन महीप सैन लै
अंब--डार पर कोकिल झूले ॥
ठौर ठौर द्रुम बेली फूली कालिंदी के कूले ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर सॅग विरहत स्यामा स्याम सम तूले ॥

८३

[वसंत

फूली द्रुम-बेली भाँति भाँति ।
नव वसंत सोभा कहि न जाति ।।

देखें रंग रंग हरखें नैन ।
स्रवननि पोषत पिक मधुप बैन ।।

सुखदाइक नासा नव आमोद ।
रसना मधु स्वादनि बहु विनोद ।।

कुसुमनि कुसुमाकर महाइ ।
त्रिविधि समीर हियरौ सिराइ ।।

'दास चतुर्भुज' प्रभु गोपाल ।
बन बिलसत गिरिधरन लाल ।।

८४

[बिहागरौ

बरसाने की ग्वालिनी खेलति फागु वसंता हो ।
संक न मानें काहु की मात पिता सुत कंता हो ।।

चंद्रभगा चंद्रावली मधि नायक राजति राधा हो ।
सहज सुरूप सुहावनो सो सिंधु अगाधा हो ।।

सकल साज सँग लै चलीं आईं बट संकेत हो ।
पठई सखी एक आपुनी नंद-कुँवर के हेत हो ।।

चली सुचतुर-सिरोमनि और खेलन कों रस फागा हो ।
रसिक कुँवरि वृषभान की तुम सों अति अनुरागा हो ।।

रामकृष्ण हँसि यों कह्यौ सुनो हो सखा श्रीदामा हो ।
हम पें आईं सबै जुरीं और तिन में अति भामा हो ॥

बेगि चलौ सब साज लै दिखावौ अपने हाथा हो ।
जैसें बहोरि न आवहीं छाँडि आपुने साथा हो ॥

अनत अबीर गुलाल लै देह निसान पुराई हो ।
वोहोत कलस सौंधें भरे कुंकुमा भरि पिचकाई हो ॥

दल बादल ज्यों देखि कें सन्मुख आईं धाई हो ।
मेघ घटा ज्यों बरखे ही हो अद्भुत खेल मचाई हो ॥

कमलनि लै लै नवला सी कुसुम गेंद करि मारी हो ।
मुरि भाजे बलि मोहना हो हो कहें ब्रजनारी हो ॥

चंद्रावली जु बल गहे स्याम गहे श्रीस्यामा हो ।
सखा गए सब भाजिके लियो है छिडाइ दमामा हो ॥

संकरषन सौंधे भरे स्याम भरे सुकुमारी हो ।
आनन सीस सँवारि के भेष बनायो नारी हो ॥

रस बस भई ब्रज सुंदरी लीला कहिय न जाई हो ।
'चत्रभुज' प्रभु इन बस कियो गिरि गोवर्धनराई हो ॥

८५

[धमार–गौरी

ब्रज में अति रस बढ्यौ हो हो, होरी खेलत नंदकिसोर ।
गौरी राग अलापत गावत, मधुर मधुर मुरली कल घोर ॥

कटि पियरो पट फेंट बनी छबि, सीस चन्द्रिका मोर ।
मन्मथ मान हरत हँसि चितवनि, चपल नैन की कोर ॥

बालक बृंद स्याम-सँग सोभित, उत सँग हैं ब्रज नारि ।
बिबिध सिंगार सजी मिलि झुंडनि, देति भाँवती गारि ॥

देखि समाज सखा मोहन कौ, धाईं मनहिं हुलासि ।
तिनमें मुख्य राधिका नागरि, सकल सुखनि की रासि ॥

दुंदुभि झाँझ मुरज डफ बाजें, मृदंग उपंग अरु तार ।
दुहुँ दिसि माच्यौ खेल परस्पर, घोप-राय दरबार ॥

चोवा साखि अरगजा चंदन, केसर सुरंग मिलाइ ।
तकि-तकि तरुनि गोपालहि छिरकति, करनि कनक-पिचकाँइ ॥

उत मन मुदित लिए कर सौंधों, सखनि सहित बलबीर ।
जुवति-कदंबनि ऊपर बरखत, सुरंग गुलाल अबीर ॥

जुवति जूथ पेलि सन्मुख है, मोहन पकरे जाइ ।
काजर नैन आँजि प्रीतम कैं, मुरली लई छिडाइ ॥

पिय प्यारी की जोटी बनाई, अँचल सों पट जोरि ।
सैंनहिं सैंन परसि कर सों कर, हँसति सबै मुख मोरि ॥

मगन भई तन की सुधि बिसरी, हृदै गह्यौ अनुराग ।
यह सुख तीन लोक में नाहीं, गोपिनि कौ बड भाग ॥

चीर हार अँग अंगनि भींजे, कीच सँची ब्रज-खोरि ।
मानहुँ प्रेम-समुद्र अधिक, चल उमगि चल्यौ मिति फोरि ॥

'चत्रुभुजदास' विलास फाग कौ, कहत न वरन्यौ जाइ ।
लीला ललित देव-गन मोहे, गिरि गोवर्धन-राइ ॥

८६

[कानरो

वृन्दावन में खेलत होरी ।
बालक-वृंद स्याम सँग सोभित
जुवति-जूथ मधि राधा गोरी ॥

नवसत साजि सकल ब्रजसुंदरी
गावति आवति गारि सुहाई ।
नैन कटाच्छ हरत हरिनी मन
गिरिधर पिय कौ चित्त चुराई ॥

ताल, पखावज, बंस-धुनि बाजत
बिच मुरली-धुनि सहज सुहाई ।
ढोल, निसान, दुंदुभी बाजत
मदन भेरि, आनक सहनाई ॥

रुंज, मुरज अरु झाँझ झालरी
बाजत कर कठताल उपंगा ।
अरु पिनाक किन्नरी श्रीमंडल
मधुर जंत्र बाजत मुख चंगा ॥

कबहुँक दोऊ मिलि गावत
मानहुँ कोकिल स्वर मोर ।
सप्त सुरनि मोहे स्थिर चर वरु
अरु मोहे रतिपति जोर ॥

चोवा चंदन और अरगजा
अरु छिरकति कुंकुम कौ नीर।
बरखत मेघ मानों चहुँ दिसि तें
सोभित है तन स्याम सरीर ॥

जुवति–जूथ वृषभानु–नन्दिनी
गिरिधर पिय लीन्हे हैं घेरि।
हाथनि मोहति कनक पिचकाँई
छिरकति कमल बदन पर हेरि ॥

श्रीराधा सैननि दै आई
चंद्रावलि पकरे भरि कोरि।
नैंन आँजि मुख मर्दन कीनों
तारी देति हँसति मुख मोरि ॥

तब प्यारी मोहन गहि लीनें
श्रीराधा कर सर्वस कीनें।
ब्रजबनिता मन पूरन कीनों
प्रेम सलिल उर अंतर भीनें ॥

इहि विधि प्रिय–सँग खलत होरी
नाचति गावति हँसति किसोरी।
गिरिधरलाल की लीला गावै
'चत्रुभुजदास' चरन–रज पावै ॥

८७

[अडानों

मैया मोहन ख्याल पर्यौ । [री]

सुरँग गुलाल अबीर कुमकुमा
लै करि मानों मेरौ बदन भर्यौ ॥ [री]

ज्यों ज्यों मनगानि त्यों त्यों नियरें आवन
झटकि अंचलु, मोहन अंक भर्यौ । [री]

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर की ढिग यों
चूँबि कपोलनि लै जु उगार धर्यौ ॥ [री]

८८

[गोरी

ललना खेलै फागु बन्यौ ब्रज-सखा लियें नँद-नंदना ।
बंसी धरें कहत हो हो होरी जुवती-जन मन-फंदना ॥
घर-घर तें सुंदरि चलीं देखन आनँद फंदना ।
साजें ताल मृदंग झाँझ डफ गावत गीत सुछंदना ॥
ठाईं ठाईं अगरु अबीर लियें कर ठाईं ठाईं बूका बंदना ।
हाथनि धरें कनक पिचकाँई छिरकत चोवा चंदना ॥
क्रीडारस-बस भये मगन सब मान न मन आनंदना ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु सब सुख-निधि गिरिधर-बिरह-निकंदना ॥

८९

[वसंत

मदन मोहन प्यारी राधा-सँग
खेलत सरस वसंत ।
अबीर गुलाल कुंकुमा केसरि
तकि तकि के छिरकति हसंत ॥

ताल मृदंग मुरज डफ बाजत
गावत राग हिंडोल सुहंत ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल छबि
देखि थकित मनमथ लजंत ॥

९०

[गौरी

मदनमोहन गव्हर वन खेलत सरस धमारि ।
सेंदुर भरि बहु माँगें आई सब ब्रज नारि ॥

फूले लता चहूँदिसि बरन बरन बहु भाँति ।
भयो हुलास जंतुनि कोकिल कल काँति ॥

गूँजत मधुप सुहाए स्रवन सुनत सुख होइ ।
वैभव निरखि नयो रँग उठि धाए सब कोइ ॥

बाजत ताल पखावज आवज डफ मुख चंग ।
वेनु मधुर धुनि कूजत स्यामसुंदर ता संग ॥

निर्तत नाना बानी सुघर सुदेस ।
बोलत हो हो होरी भयो अधिक आवेस ॥

चोवा अगर अरगजा केसरि मिली सुरंग ।
छिरकति भर पिचकाँई सोभित छींटे अंग ॥

तब सखी सात पाँच मिलि मोहन पकरे जाइ ।
सोंधौ छाँटि नैननि में मुरली लई छिडाइ ॥

एक सखी कर में लै फिरति मंडली जोरि ।
तिनहिं मध्य ब्रजपति गति लेत चतुर चित चोरि ॥

परसत कर उर चोली बोली ठोली डारि ।
मंद मंद मुसिकाइ के देति परस्पर गारि ॥
पट खेंचति मुख मांडति अति प्रमुदित ब्रजबाल ।
आलिंगन में बोलत फगुवा देहो गोपाल ॥
रहत चीर द्रुम द्रुम प्रति टूटत मोतिनि हार ।
भयौ मगन मन सब कौ तन की तजी सँभार ॥
अंचलु हरि पर फेरति सर्वसु डारति वारि ।
प्रेम मगन रस बस भईं स्याम मनोहर नारि ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन संग बाढ्यौ प्रेम अपार ।
देववधू अति लालच चाहति घोष-विहार ॥

९१

[गौरी

मन कौ मोहना बोलै हो होरी ।
हलधर मिले मनोहर जोरी ॥
नवल फागु नव खेल नयो रँग ।
नव समाज नव साज नयो री ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझि डफ
गौरी राग मुरली धुनि थोरी ।
गावत चेत गोप बालक-संग
किलकत फिरत घोष की खोरी ॥
स्रवन सुनत सब गोकुल नारी
सजि सिंगारु भईं इक ठोरी ॥
निकसीं धाइ मुदित मंदिर तें
जुवती-जूथ-सँग राधा गोरी ॥

सुरविमान सब कौतुक भूले
लीला ललित देखि सुख सो री ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन चंद-छबि
चितवति वधू-समूह चकोरी ॥

९२

[सारंग

मुरली अधर धरें नँद-नंदन
हो हो होरी बोलत जू ।
लिएँ सखा सँग देत फूल सब
व्रज की पौरिनि डोलत जू ॥

पहिरें बसन अनेक तन
नील पीत सेत राते जू ।
सुरंग गुलाल अबीर फेंट भरि
फिरत महा रस माते जू ॥

बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ
अरु बाँसुरी सुर थोरे जू ।
गावत सरस धमारिनि यों रँगु
रसिक-मंडली जोरें जू ॥

स्रवन सुनत सब गोकुल नारी
घर-घर तें उठि दौरी जू ।
सजे समाज सबै जुरि आईं
नंदराइ की पौरी जू ॥

पहिरें दिव्य कटाव की चोली
नौतन झूमक सारी जू ।
गुनियन कसे झूमक गावति
परम भाँवती गारी जू ॥

बिविध-सिंगार बने सब ही अँग
भूषन नावें सीस जू ।
मुखहिं तँबोल नैन भरि काजर
सैंदुर माँग सुदेस जू ॥

कंठसिरी मखतूल मोति अरु
उर गज मोतिनि हार जू ।
कर कंकन, कटि किंकिनी की छबि
पग नूपुर झनकार जू ॥

अलकावली आड मृगमद की
बरनि सकै मुख भाँति जू ।
खुटिला खुंभी रुचिर नक बेसरि
दूरि करत रवि कांति जू ॥

तिनमें मुख्य राधिका नागरि
सबहिनि ऊपर सोहै जू ।
कुटिल कटाच्छ फागु के औसरु
मोहन कौ मन मोहै जू ॥

जुवति-जूथ दल पेलि संमुख व्है
जित तित सखा भजाए जू।
जाइ गह्यौ पट स्यामसुंदर कौ
जीत के बाजे बजाए जू॥

....
....
कोउ करतें मुरली लै भाजी
कोउ मनि मोतिनि माला जू॥

चंद्रावली चोवा चंदन लै
सीस स्याम के भावति जू।
ललिता बिसाखा नैन आँजि मुख
रोरी हरद लगावति जू॥

कोउ प्यारी कौ अँचरु लै के
पिय के पट सों जोरै जू।
कोउ कहै करौ जुहार लडैती कों
कोउ कहै मुख मोरै जू॥

मगन भई तन की सुधि बिसरी
उर आनँद न समाई जू।
आलिंगन दै श्रीमुख चितवनि
मनहुँ रंक निधि पाई जू॥

वरन वरन भए बसन भाँजि रँग
कीच धरनि पर बाढी जू।
टूटे हार टूटी अलकावलि
फटी कंचुकी गाढी जू॥

सब सुख जीति चली ब्रजजुवती
गईं जमुना के कूलनि जू।
लीला ललित निहारि देवगन
बरखन लागे फूलनि जू॥

इहि विधि खेलैं फागु संग मिलि
इत गोविंद उत गोरी जू।
'चत्रभुज दास' रहौ ब्रज अबिचल
राधा माधौ-जोरी जू॥

९३

[वसंत

रतन जटित पिचकाँइनि कर लियें भरत लाल कों भावै।
चोवा चंदन अगर कुंकुमा विविध बूँद बरखावै॥
कबहुँक कटि पट बाँधि निसंक व्है लै नवलासी धावै।
मानों सरद चंद्रमा प्रगटयौ ब्रज मंडल तिमिर नसावै॥
उडत गुलाल परस्पर आँधी रहयौ गगन लों छाई।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरनलाल छबि मो पै बरनी न जाई॥

९४

[विभास

होरी खेलत ब्रज नंद-लडैतौ लाल ।
चोवा चंदन और अरगजा कंठ सोहत मोतिन माल ॥
कोउ गुलाल केसरि भरि लीये कोऊ कंचन-थाल ।
इक नाचत, इक मृदंग बजावत, गावत गीत रसाल ॥
छिपत फिरत कुंजन महियाँ हा हा करति भई बेहाल ।
'चत्रुभुज' प्रभु गरें लगाइ लई रीझि दई उर-माल ॥

९५

[बिलावल

होरी खेलत साँवरो ग्वाल बाल संग कीन्हे जू ।
मृगमद चोवा केसरि सों पिचकाई भरि लीन्हे जू ॥
छिरकत भरत आनँद सों प्यारी अति रस भीने जू ।
तन मन धन सब वारहीं 'चत्रुभुज' प्रभु बस कीन्हे जू ॥

९६

[गौरी

हो हो होरी बेनु-मधि गावै स्याम ।
निर्तत जुवती समूह संग मिलि मधुर ताल बिस्राम ॥
फूले लता नवल गहवर बन
बरन बरन बहु भाँति ।
कुलकत सुक पिक आनँद भरे ॥
मनोहर मधुपनि-पाँति ॥

बाजत चंग उपंग मुरज डफ झालरि झाँझ मृदंग।
मदन गोपाल लेत गति सहज लजावत कोटि अनंग ॥

कुंकुम बंदन चंदन अरगजा सुगंधताई।
बीच बीच तकि तकि तानत नैननि पिचकाई ॥

फाटत चीर रहत द्रुम द्रुम प्रति टूटत मोतिनि हार।
क्रीडा रस बस भए मगन मन. तनकी तजी सँभार ॥

'दास चतुर्भुज' प्रभु चहुँ दिसि जुरि बोलत व रागु।
सुख समूह गोवर्धन-धर रच्यौ रँगीलौ फागु ॥

९७

[गौरी

हो हो हो हो हो हो होरी। सुंदरस्याम राधिका गोरी ॥
राजत परम मनोहर जोरी। नंदनँदन वृषभानु-किसोरी ॥

डफ औ ताल मृदंग बजावत।
गौरी राग सरस सुर गावत ॥

नवसत साजि सकल ब्रजनारी।
प्रमुदित देति भाँवती गारी ॥

झुंडनि जुरि चहुँ दिसि तें दौरी।
मदनगोपाल गहे भरि कौरी ॥

औधौं बहोत सीस तें नायौ।
रंग बसन कीन्हौ मन भायौ ॥

नवल अबीर सखा सँग लीनैं ।
फिरत उडावत फैटन दीनैं ॥
नैन आँजि रोरी मुख माँडत ।
प्रेम, आलिंगन दै दै छाँडत ॥
हरि मृदु भुजा कंठ लै लावति ।
अंतर कौ अनुराग जनावति ॥
मगन भई तन सुधि न सँवारति ।
प्राननाथ पर सर्बसु वारति ॥
'चत्रुभुज' प्रभु पिय सब सुखसागर । सुर नर मोहे गिरधर नागर ॥

डोल–

९८

[देवगंधार

मनमोहन अद्‌भुत ढोल बनी ।
तुम झूलौ हौं हरषि झुलाऊँ वृंदावन–चंद धनी ॥
परम विचित्र रच्यौ विश्वकर्मा हीरालाल मनी ।
'चत्रुभुजदास' लाल गिरिधर–छबि का पै जात गनी ॥

फूल मंडनी–

९९

[सारंग

फूलनि की मंडनी मनोहर बैठे तहाँ रसिक पिय प्यारो ।
सोभित सबै साज नाना विधि फूलनि कौ भवन परम रुचिकारी ॥
फूल के थंभ फूल की चौखटि,
फूलनु बनी है सुदेस तिवारी ।

फूलि बढी अब दास 'चतुर्भुज' सखि सुख फूलि हिये विलसे हैं ।
फूली निसा ससि फूलि रहे गिरिधारी जू आपुन कुंज बसे हैं ॥

१०२

[सारंग

बैठे लाल फूलनि की चौखंडी ।
चंपक बकुल गुलाल निवारौ राइवेलि सीखंडी ॥
जूही जई केवरा कूजौ करनि कनेर सुरंगी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल की बानिक नव नव रंगी ॥

१०३

[सारंग

सौरभ रितु माधवी सुहाई फूलि रहे हैं सकल बनराई ।
फूलनि के फोंदा रचि गूँथे फूलनि ही की माल बनाई ॥
फूलनि के कंकन बिजांइठे फूलन की चौकी ढरकाई ।
फूले रहत सखा-मंडल में फूली सखी राधा ढिंग आई ॥
हँसि हँसि कहत लाल गिरिधर सों फूलन की मंडनी बनाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु मोहन फूलनि में अंग-अंग सोभा बरनी न जाई ॥

१०४

[सारंग

बैठे लाल फूलनि की तिवारी ।
फूलनि के वागे अरु भूषन फूलनि ही की पाग सँवारी ॥

ढिंग फूली वृषभानु-नंदिनी
तैसिय फूलि रही उजियारी ।
फूल के छाजे झरोखा अरु
फूलनि की सजी अटारी ॥

फूले सखा चहुँ ओर निहारत
बिविध भाँति सों करनि सँवारी ।
'चत्रुभुज' प्रभु सहचरि सब फूलीं
फूले रहत लाल गिरिधारी ॥

आचार्यजी की वधाई—

१०५

[सारंग

* श्रीलछमन भट देत वधाई ।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ भक्त सुखदाई ।
विप्र सबै मिलि करत वेद धुनि देत असीस सुहाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर हरखे हैं, निज सेवा प्रगटाई ॥

अक्षयतृतीया (चंदन-धारण)

१०६

[सारंग

देखि री देखि रसिक नंदनंदनु ।
लटपटी पाग सुभग आधें सिर राखी है भुरकि कछु बंदनु ॥

* ' श्रीलछमन गृह आजु वधाई ' इस प्रारंभ से कुछ परिवर्तन के साथ ' कुंभनदास ' कृत पद है ।
देखो-' कुंभनदास पद संग्रह सं. ८२ वि. विभाग ।

मृगमद तिलक रुचिर बनमाला तनु चरचित नव चंदनु ।
चितवनि चारु कमल दल लोचन जुवती-जन-मन फंदनु ॥
कबहुँक सहज बजावत सारंग कल मुरली सुर मंदनु ।
'चत्रभुज' प्रभु सुख-रासि सकल अंग गिरिधर बिरह निकंदनु ॥

१०७

[सारंग

आजु बने नंदनंदन री नव चंदन कौ तनु लेपु कियें ।
तामें चित्र धरे केसरि पुट सोभित हैं हरि सुभग हियें ॥
तनसुख कौ कटि बाँधे पिछौरा ठाढे हैं कर कमल लियें ।
रुचिर ब माल पीत उपरैंना नैंन मैन सर से देखियें ॥
करन फूल प्रतिबिंब कपोलनि मृगमद तिलकु लिलाट दियें ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सिर टेढि पाग रही भृकुटि छियें ॥

१०८

[सारंग

देखि सखी गोविंद कें चंदन सोभित साँवल अंग ।
नाना भाँति चित्र किए ता मँहि केसरि विविध सुरंग ॥
कंठ माल पीरौ उपरैना बनी इजार पचरंग ।
कनक करनफूल भृकुटी गति मोहत कोटि अनंग ॥
मृगमद तिलक कमलदल लोचन सीस पाग अरधंग ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर तनु छिनु छिनु छबि की उठत तरंग ।

१०९

[सारंग

चंदन की खोर किएँ मोतिनि की माल हिएँ
अरगजा अंग अंग सोहत नँदलाल कें ।
एकटक रही रीझि निरखि सुर पुर रह्यौ
कुसुम बरखत टगटगी न परत द्रगनि माँझ
छबि बिसाल कें ॥

पुतरी–सी लिखी चित्र नयो नेह नयो मित्र
थकित भई बिबस बस बानिक उर बाल कें ।
'चत्रुभुज' प्रभु सिंघद्वार ठाढ़े कर कमल लियें
कुल्ही रही भौंह परसि देखौ री गोपाल कें ॥

रथ प्रसंग–

११०

[मलार

देखो री या रथ की सुंदरताई ।
कनक विचित्र बनी परम मनोहर विद्रुम सोभा पाई ॥
चक्र चहूँ दिसि ध्वजा पताका तोरनमाल बँधाई ।
तहाँ बैठे सुंदर मनमोहन श्रीगोकुलपति राई ॥
वाम भाग वृषभानुनंदिनी अति सोभा सुखदाई ।
'चत्रुभुजदास' रसिक गिरिवरधर व्रजजन देत बधाई ॥

१११

[मलार

देखौ माई ! रथ बैठे गिरिधारी ।
मोरमुकुट मकराकृत कुण्डल मुरली की छबि न्यारी ॥
छत्र चँवर अरु ध्वजा पताका लागत अति सुखकारी ।
व्रजरानी मिलि करति आरती 'चत्रुभुजदास' बलिहारी ॥

पावस वर्णन—

११२

[मलार

ठाँ ही ठाँ नाचत मोर सुनि सुनि नव घन की घोर,
बोलत हैं चहूँ ओर अति ही सोहावने ।
घुमँडनु की घटा निहारि आगम सुख जिय बिचारि,
चातक पिक मुदित गावत द्रुमनु बैठि सोहावने ॥
नवल बन में पहरि तन में कसूँभी चीर कनक बरनि
स्यामसुंदर सुभग ओढें बसन पीत सोहावने ।

११३

[नटनारायन

रंगु नीक री फुही थोरी थोरी ।
हरित भूमि तामें कसूँमी चीर सखी समूह ओढें बनि जोरी जोरी ।
नवल पीतांबर ओढें गिरिधारी लाल नवल घटा अरु नौतन गोरी ।
पावस रितु सुख 'चत्रुभुजदास' स्वामिनी बिलसहिं नवल बन की
खोरी खोरी ।

११४

[मलार

*ब्रज पर नीकी आजु घटा ।
नान्ही नान्ही बूँदें सुहावन लागीं चमकत बीजु छटा ।।
गरजत गगन मृदंग बजावत नाँचत मोर नटा ।
गावत स्रवन देत चातक पिक प्रगट्यो है मदन भटा ।।
सब गुन[1] भेंट धरत नंदलालै बैठे ऊँच अटा ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधरनलाल सिर कसुंभी पीत पटा ।।

११५

[मलार

°स्याम सुनु नियरौ आयो मेहु ।
भीजेगी मेरी सुरंग चूनरी ओट पीत पट देहु ।।
दामिनि तें डरपति हौं मोहन निकट आपुने लेहु ।
'दास चतुर्भुज'प्रभु गिरिधर सों बाढ्यो है अधिक सनेहु ।।

११६

[मलार

नव किसोरी नव किसोर बनी है बिचित्र जोरि
सोभा सिंधु मदन मोहन रूप रासि भामिनी ।
राजत तन गौर स्याम प्यारी पिय भाग बाम
नव घन गिरिधरन अंग संग मनहु दामिनी ।

---

* कुंभनदास पद संग्रह सं. ९७ [वि विभाग कांक. प्रकाशन 'व्रज पर नीकी आजु छटा हो ' इस प्रकार छपी है.

१ मिलि--पाठभेद कुंभनदास ,,

° ' कुंभनदास पदसंग्रह ' देखो पद सं. १०४ [वि. विभाग प्रका.

पहिरें पट पीत राते भूषन भूषित मनोहर
गज बर गोपाल नागर नागरी गज गामिनी ।
'दास चतुर्भुज' दंपति उपमा कहँ नाहिंन और
काम मूरति कमल लोचन मृगनयनी कामिनी ॥

हिंडोरा—

११७

[मालव

हिंडोरें झूलत लाल गोवर्द्धनधारी सोभा बरनी न जावै हो ।
बाम भागि बृखभान नंदिनी नवसत अंग बनावै हो ॥

अति सकुँवारि नारि डरपति है मोहन उरसि लगावै हो ।
नील पीत पट फरहरात है मन दामिनि दुरि जावै हो ॥

मनहुँ तरुन तमाल मल्लिका अंग अंग अरुझावै हो ।
गौर स्याम छबि मरकत मनि पर कनक बेलि लपटावै हो ॥

सुरत सिंधु बिलसत दोऊ जन सब सहचरी सुख पावै हो ।
'चत्रभुजदास'लाल गिरिधर—जसु सुर मुनि सब मिलि गावै हो ॥

११८

[मलार

पावस रितु नीकौ रंगु लाग्यो हिंडोरें संग झूलें ब्रजनारी ।
सांवन मास फुहीं थोरी—थोरी तैसिये भूमि हरियारी ॥

नव घन नव बन नव पिक चातक नवल कसूंभी सारी ।
नवल किसोर बाम अँग सोभित नव बृषभान—दुलारी ॥

कंचन खंभ सुजटित मनि पटिली डाँडी सरल सँवारी।
'चत्रभुजदास' प्रभु मधुर झोटिका देत लाल गिरिधारी ॥

११९

[हिंडोरा

हिंडोरना झूलन के दिन आए।
गरजत गगन दामिनी कौंधति राग मलार जमाए ॥
कंचन खंभ सुढार बनाए बिच बिच हीरा लाए।
डाँडी चारि सुदेस सुहाई चौकी हेम जराए ॥
नाना बिधि के कुसुम मनोहर मोतिनि झूमक छाए।
मधुर मधुर धुनि बेनु बजावत दादुर मोर जिवाए ॥
रमकनि झमकि बनी पिय प्यारी किंकिनी सबद सुहाए।
'चत्रभुज'प्रभु गिरिधरन चंद सँग मानिनि मंगल गाए ॥

१२०

[नट

सुरँग हिंडोरना हो माई झूलत रंग भरे।
तैसे पीउ पियारी पहिरे पियरौ पट कसूँभी सारी
तैसीये रितु पावस घन चहुँ दिसा घुमरे ॥
तैसेई विस्वकर्मा सुघर अद्भुत मनि मानिक धरि
ठौर ठौर रचिकैं रुचिर भाँति करे।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिवरधर हँसि हँसि लपटात ज्यों ज्यों
सहचरि चहूँ ओर देति झोटका खरे ॥

१२१

[नट

मुदित झुलावति अपनें अपनें ओसरौं
नवल हिंडोरी साज्यो नवल किसोर ।
नवल कसूँभो सारी पहिरें नव वधू प्यारी
तैसी भूमि हरियारी राजत चहूँ ओर ॥
नवल गीत झुँडन गावति कंचन खंभ के ढिंग
नवल बन में नीके लागत पिक चातक मोर ।
नवल घटा सुहाई परति थोरी थोरी बूँदें
बीच बीच नव घन की घोर ॥
राधे तन नव चूनरी नव पट पीत स्याम कें अंग
नवल मनिमै जटित पटिला बैंठे हैं एक जोर ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नव पावस रितु
नव रस बरखत देत मधुर रोर ॥

१२२

[मलार

छबीले लाल के संग ललना झूलत नव सुरँग हिंडोरें ।
सोभित तन गौर स्याम पीरो पटु कसूँभी सारी
जटित मानिक मनि पटिला बैठे इक जोरें ॥
तैसी हरित भूमि तैसिये थोरी थोरी बूँदें
तैसिये गावति त्रिय तैसोई घन मधुर मधुर घोरें ।

'चत्रभुज' प्रभु गिरिवरधर तैसिये सुख रासि राधे
पीउ प्यारी अद्‌भुत छबि रति-रति चितु चोरें ॥

१२३

[कानरौ

जमुना-तट नव सघन कुंज में हिंडोरना झूलन सब आईं ।
मधि राधा माधौ दोउ बैठे आसपास जुवती मन भाईं ॥
सावन मास हरित घन वन में रिमझिम रिमझिम बूँद सुहाई ।
कछु भींजे पट अंग झलमले नव नव छबि बरनी नहिं जाई ॥
विविध भाँति झूलत औ फूलत रस प्रवाह उमँगे न समाई ।
गावत सावन गीत मुदित मन संक न मानी निडर सुभाई ॥
अतिरस मत्त भई त्रिय जब ही स्यामसुंदर तब लै उर लाई ॥
चिर संचित अभिलाष भए सब अधर सुधा पीवत न अघाई ।
बीच बीच मुरली धुनि सुनियत, केकी पिक चातक तिहिं ठाँई ।
'चत्रभुजदास' वारने लै लै गिरिधर पिय रति कीरति गाई ॥

१२४

[कानरौ

* नंदनंदन हिंडोरे झूलें माई री ।
सँग वृषभानु-सुता अति सोहै रिमझिम रिमझिम बूँद सुहाई री ॥
गावती सावन गीत बानिक बनी व्रज वनिता पिय जीय भाई री ।
'चत्रभुज' प्रभु तब छबीली छबि निरखें रीझि रीझि सब उर लाई री ॥

* 'झूलत री नँदनंदन हिंडोरे माई' पाठभेद

१२५

[बिहाग

झूलत लाल गिरिवरधरन ।
परम रसिक सिरोमनि प्यारी राधिका मन-हरन ॥
स्याम सीस सीखंड सम कनक के आभरन ।
नील पीत दुकूल दमकत गौर स्यामल बरन ॥
जबहिं झोटा देति प्यारी लागत अति मन डरन ।
'चत्रुभुज' प्रभु निपुन नागर चपल अँग भुज भरन ॥

१२६

[काफी

झूलत जुगलकिसोर सुरंग हिंडोरना ।
गरजत गगन चहूँ दिसि पवन झकझोरना ॥
द्वै खंभ डाँडी चारु विस्वकर्मा गढी ।
पटुली पिरोजा लाल चौकी हीरा जडी ॥
कोयल कूजत कुंज में सब्द सुहावनी ।
चहुँ दिसि चमकति बिज्जु पिय मन भावनी ॥
जुवती करति कौतूहल जो घन गाजहीं ।
ताल मृदंग उपंग बाजे बहु बाजहीं ॥
पिय के सीस सेहरौ सब मिलि बाँधहीं ।
नवल ब्याह के गीत सबै मिलि गावहीं ॥

उभय परस्पर भुवन दुंदुभी बाजहीं।
मिलि दंपति अनुराग भरे दोउ राजहीं ॥
ब्रजजन मन आनंद ब्रह्मादिक हरखहीं।
नाना विधि के पुष्प वर्षा जो बरखहीं ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल सँग झूलहीं।
यह सुख देखत व्रज जन सब मन फूलहीं ॥

१२७

[विहागरौ

नवल हिंडोरे लै स्यामा प्यारी।
अति आनँद प्रफुलित मनमोहन
नवल लाल श्रीगोवर्धनधारी ॥
नवल खेल आँगन में बने
डाँडी चारि बनी अति भारी।
मरुवौ नवल झूमक नव लटकें
नौतन छबि लागति अति भारी ॥
नवल घटा में नवल घन राजत
नवल दामिनी चमकति न्यारी।
नव नव मोर झकोरत वन में
दादुर नवल रटत झिंकारी ॥
नवल नवल सखी निरखन आईं
मृगमद आड लिलाट सँवारी।
अंग अंग आभूषन नौतन
नव सुगंध सोंधौ अधिकारी ॥

करत विनोद आनंदिन बन में
नंदनँदन वृषभानुदुलारी ।
'चत्रभुज'दास निरखि दंपति सुख
तन मन धन कीनो बलिहारी ।।

१२८

[कान्हरो

फूलन कौ हिंडोरौ बन्यो फूलनि की डोरी
फूले नँदलाल फूली नवल किसोरी ॥
फूले सघन बन फूले नवल कुंज
फूली फूली जमुना बहै हिलोरी ॥
फूलनि के खंभ दोऊ डाँडी चारि
फूलनि पटुली बैठे इक जोरी ।
'चत्रभुज'प्रभु गिरिधर फूले झूलत
फूली फूली भामिनी देति झकझोरी ॥

१२९

[कान्हरो

व्रजजुवतिनि के जूथ में झूलें पिय प्यारी हिंडोरें ।
तैसोय सुरंग सारी पहिरें सुभग अंग
खमकि कंचुकी पिय सरसत परसत बरसत रस द्रग कोरें ॥
सुभग सहचरी मिलि ज्यों झुकि झोटा देति
त्यों त्यों तोरि मोरि तन डरी–सी
ऑकौ भरत लेति चतुर चित चोरें ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर की बानिक देखि
रीझि भींजि सब व्रजजन हुलसत वारत हैं तृन तोरें ॥

१३०

[मलार

हिंडोरें माई झूलें श्रीगिरिवरधारी ।
वाम भाग वृषभानुनंदिनी पहिरि कसूँभी सारी ॥
ब्रज जुवती चहुँ दिसि सब ठाढीं निरखि नैननि हारी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सँग बाढयो रंग अपारी ॥

१३१

[मलार

हिंडोरा माई कुसुमनि भाँति बनाई ।
नव किसोर मुरलीधर सुंदर ढिंग राधा सुखदाई ॥
छाइ रहे जित तित तें बादर दामिनि की अधिकाई ।
दादुर मोर पपीहा बोलत नान्हीं नान्हीं बूँद सुहाई ॥
झोटा देति सकल ब्रजसुंदरि त्रिविध पवन बहाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन हिंडोरे झूलौ यह छबि
बरनी न जाई ॥

पवित्रा—

१३२

[सारंग

पवित्रा पहिरें श्रीगिरधरलाल ।
सुंदर स्याम छबीलौ नागर सकल घोष प्रतिपाल ॥
हठि मन हरत हमारौ मोहन संग नागरी बाल ।
'चत्रुभुज' प्रभु भामिनी पूरन चंद नवल नंदलाल ॥

लीला

—:०:—

जगावनौ—

१३६

[भैरव

उठो हो गोपाललाल दुहो धौरी गैया।
सद दूध मथि पीवहु धैया॥
भोर भयौ बन तमचुर बोले।
घर घर घोष द्वार सब खोले॥
तुम्हारे सखा बुलावन आए।
कृष्ण कृष्ण कहि मंगल गाए॥
गोपी रई मथनियाँ धोवै।
अपनो-अपनो दह्यौ बिलोवै॥
भूषन बसन पलटि पहिराऊँ।
चंदन तिलक ललाट बनाऊँ॥
'चत्रुभुज' प्रभु लाल गिरिवरधारी।
मुख-छबि पर बलि जाइ महतारी॥

१३७

[रामग्री

मैया तेरे लाल कौ मुख देखन आई।
कालि देखि मुख गई दधि बेचन जातहिं गयो बिकाई॥

दिन तें दूनौ दाम लाभ भयो गांइनि बछिया जाई ।
आई सबै थँभाइ माथ की मोहन देहु जगाई ॥
सुनि मृदु बचन बिहँसि उठि बैठे नागरि निकट बुलाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल कौं चली संकेत बताई ॥

मंगला (कलेऊ)

१३८

[देवगंधार

गोवर्धनधर मुरली अधर धरो
कहति जसोदा रानी जागौ मेरे प्यारे ।
सँग के ग्वाल खरिक मुख टेरत
उछट जात गैयाँ तुम जु आओ
अब नेंकु कान्हा रे ॥

उठे प्रात गात कहन लागे मात तात
करौ हो कलेऊ आतुर जिन होउ प्यारे ॥
'चत्रुभुज' प्रभु जानि भागि तेरौ
पूरन ब्रह्म सों कहति लला रे ॥

१३९

[विभास

प्रात हि कुंजमहल पलिका तें
ललिता स्यामहिं आन जगावै ।
नैन उनींदे अति रस बींधे
चपल भौंह गति भेद बतावै ॥

टहल करत ते चलीं सबै मिलि
कोमल कर सों चरन दबावै।
लै कर चरन धरत कुच ऊपर
रैनि मैन-तन-ताप बुझावै ॥

अगनित गुन रस गान करति है
मधुरे सुर कर वीन बजावै।
जब मुख कर्यौ लली अंचर पट
तन मन अति हरखावै ॥

रति-रन छाँडि भजे कुंजनि तें
काम कटक तब काम न आवै।
'चत्रुभुज' स्यामसुंदर की लीला
वेद पुरान भेद नहिं पावै ॥

१४०

[बिलावल

प्रात समै उठि मात रोहिनी बलदाऊ कों आनि जगावै।
उठो लाल तुम करो कलेऊ कान्ह कुँवर तोहि टेरि बुलावै ॥

माखन मिश्री दही मलाई
मांट थार भरि संग चलावै।
जमुनोदक झारी भरि लावैं
हस्त पखारत खात खवावै ॥

मुख धोवत पोंछत आँचर सों अरु सब तैल लगावै।
चंदन घिसि मृगमद मिलाइके केसरि सों उवटावै ॥

जमुना-जल तातौ लै सीरौ
झारी भरिकै आनि न्हवावै।
अंग अँगोछि गूँथि बैनी कों
नये बसन रँग रँग पहिरावै॥

कंचन नग मनि जटित आभूषन विधि सों कर श्रृंगार बनावै।
फिरि पुचकारि निरखि श्रीमुखकों हरखै स्नेह पयोधि चुचावै॥

केलि कला से नित वन क्रीडन
तन मन अति आनँद समावै।
दोउ भ्राता मिलि झगरौ ठानत
करति न्याउ, उनकों समुझावै॥

गोद उठाइ लाइ घर भीतर बैठि पलंग, स्तन-छीर पिवावै।
मेवा बहुत गोद भरि दीनी व्रज तरिकनि कों टेरि बुलावै॥

खरिक खोलिकें गॉइ बुलाई
एक एक पै हाथ फिरावै।
'चत्रुभुज' लै कामरि लर लकुटी
ग्वालनि के संग गॉइ चरावै॥

१४१

[विभास

भोर भयौ नंद जसुदा जू
बोलैं जागो मेरे गिरिधरलाल।
रतन जटित सिंघासन बैठौ
टेरन कों आईं व्रज-बाल॥

नियरें जाइ सुपेदी खेंचति,
बहुरि बसन सों ढाँपि रसाल ।
मधु मेवा पकवान मिठाई
भामिनि लाई भरि भरि थाल ॥

तब हरि हरषि गोदी पर बैठे
करत कलेऊ तिलकु दै भाल ।
दै बीरा आरती उतारति
'चत्रुभुजदास' गावैं गीत रसाल ॥

१४२

[भैरव

नैन भरि देखों गिरिधरन कौ कमल मुख ।
मंगल आरति करों प्रात हीं परम सुख ॥
लोचन बिसाल छबि संचि हृदे में धरी
कृपा अवलोकनि चारु भृकुटीनु रुख ।
'चत्रुभुज' प्रभु आनंद निधि रूप निधि,
निरखि करों दूरि सब रैनि कौ दुख ॥

१४३

[भैरव

मंगल आरती गोपाल की ।
प्रात हि मंगल होतु निरखि कें चितवनि नैन बिसाल की ॥
मंगल रूप स्यामसुंदर मंगल छबि भृकुटी भाल की ।
'चत्रुभुजदास' सदा मंगल निधि बानक गिरिधरलाल की ॥

बाल-लीला

१४४

[बिलावल

महा महोछौ गोकुल गामु ।
प्रेम मुदित गोपी जसु गावति, लै लै स्यामसुंदर कौ नामु ।।
जहाँ-तहाँ लीला अवगाहति, खरिक खोरि दधि-मंथन-धामु ।
परम कुतूहल निसि अरु बासर, आनंदहि बीतत सब जामु ।।
नंद गोप सुत सब सुखदाइक मोहन मूरति पूरनकामु ।।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर आनँदनिधि नख सिख रूप सुभग अभिरामु ।।

१४५

[जैतश्री

माई लैन देहु जो मेरे लाल हि भावै ।
दधि माँखन चौगुनौं देउंगी या सुत के लेखें जाकी जितौ आवै ।।
पलना झूलत कुलदेव अराध्यौ जतन जतन करि घुटुरनु धावै ।
सर्वसु ताहि देऊँगी जो मेरे नान्हरे गोविंद पाँ पाँ चलन सिखावै ।।
इहै अभिलाख होत दिन दिन प्रति कब मेरौ मोहन धेनु चरावै ।
'चत्रुभुजदास' गिरिधर पिय इहि रस निरखि निरखि उर नैन सिरावै ।।

१४६

[रामश्री

अंगुरि छाँडि रेंगत अरग थरग ।
नूपुर बाजत त्यौं त्यौं धरनी धरत पग ।।

कबहूँ बसुधा माँहि भुज पसारि हँसि
डगमगाइ कें उलटि भरत डग ।
जननी मुदित मन चितै चितै सिसु तन,
कंठ लाइ सुंदर स्याम सुभग ॥
मृदु बानी तुतरात माँगि नवनीत खात
भोजन भात्र जैसें जनावत बाल खग ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर के बाल विनोद
नंद आनंद मुख ठाढे टगटग ॥

१४७

[रामश्री

देखि सखी मनि खंभ निकट जहाँ गोरस की गोली ।
संमुख प्रतिबिंब दिखाइ ससि सिखवत प्रगट करो मति चोरी ॥
अर्ध भाग आजु तें हम तुम दोऊ भली बनी है जोरी ।
माँखन लै कित डारत हौ इहै बात मति भोरी ॥
हिस्सा सबहि लियौ जु चाहत हो
बोलि मुसिकाइ आधी कहा थोरी ॥
प्रेम बिविध सों धीरज न रही कुँवरि हँसी मुख मोरी ।
'चत्रुभुजदास' गिरिधरन लाल पिय चलौ साँकरी खोरी ॥

१४८

[आसावरी

चुटिया तेरी बडी किधौं मेरी ।
अहो सुवल तुम बैठि भैया हो हम दोउ मापें एक बेरी ॥

लै तिनका मापत उनकी कछु अपनी करत बडेरी ।
लै करकमल दिखावत ग्वालनि ऐसी न काहू केरी ॥

मोकों मैया दूध पिवावति तातें होत घनेरी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर इहि आनँद नाचत दै दै फेरी ॥

१४९

[बिलावल

मया मोहिं ऐसी बहुरिया भावै ।
जैसी काहू की ढटूरिया रुनक झुनक करि आवै ॥

करि करि पाक रसोई आछी मोकों परोसि जिमावै ।
दै घूँघट-पट ओट बबा की टेढी बाँह धरावै ।

लिये उठाइ गोद नँदरानी करि मनुहारि मनावै ।
अहो मेरे कहों बाबा सों तेरौ ब्याह करावै ॥

नंदराइ नंदरानी जसोदा सुधा समुद्र बढावै ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर बतियाँ सुनि उर आनँद न समावै ॥

उराहनौ—

१५०

[देवगंधार

सुनहु धों अपने सुत की बात ।
देखि जसोमति कानि न राखत लै माँखन दधि खात ॥

भाजन भाँनि ढारि सब गोरस बाँटत है करि पात ।
जो बरजों तो उलटि डरावत चपल नैन की घात ॥

जो पावत सो गहत सहज हठि कहत हौं नहिं सकुचात ।
हौं सकुचित अंचर कर धारिकैं रही ढाँपि मुख गात ॥
गिरिधरलाल हाल ऐसे करि चलै धाइ मुसिकात ।
'दास चतुर्भुज' जानत है इह बूझि सौंह दै सात ॥

१५१

[देवगंधार

हा हा और सुनै जिनि कोऊ ।
बहुरि ग्वारि मुख तें जिनि काढै ज्यों जानैं हम दोऊ ॥
बालक कान्ह निपट लरिका अब पाँ-पाँ चलन सिखायौ ।
तासों कहति भवन अपने में चोरी माँखन खायौ ॥
घर हू करत कलेऊ क्रमक्रम जो कोउ बहुत निहोरै ।
सो क्यों अनत सकुच कौ लरिका कंचुकि के बंध तोरै ॥
'दास चतुर्भुज' लाल गिरिधर कौ इनही के अनुहोरै ॥

१५२

[विलावल

हौं बारी नवनीतप्रिया ।
दिन उठि दैन उराहनौ आवति चोरी लावति घोष त्रिया ॥
तुम बलराम-संग मिलिकें इहिं आँगन खेलहु दोउ भइया ।
निरखि-निरखि नैननि सुख पाऊँ प्रान जीवन सुत साँवलिया ॥
जोइ भावै सोइ लेहु मेरे प्यारे मधु मेवा दधि दूध घइया ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधर का के घर तुम हूँ तें अति बहुत प्रिया ।

१५३

[देवगंधार

दिन दिन देन उराहनौ आवै।
इहै ग्वालि जोवन मदमाती झूठें हि दोस लगावै ॥
कहो धौं भाजन धरे पराए कहाँ मेरौ मोहनु पावै ।
लरिका अति सकुमार गहें कर हलधर संग खिलावै ॥
कबहुँक कहति कंचुकी फारी कबहुँक और बतावै ।
कबहुँक रई मथनियाँ लै कें आँगन हाथ नचावै ॥
मनु लाग्यो कान्ह कमलदल लोचन ऊतरु बहुत बनावै।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मुख इहिं मिस छिनु छिनु देख्यो भावै।

१५४

[धनाश्री

भूल्यो उराहने कौ दैवौ ।
सनमुख दृष्टि परे नँदनंदन चकित हि करति चितैवौ ॥
चित्र लिखी सी काढी ग्वालिनि को समुझै समुझैवौ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मुख निरखत कठिन पर्‌यो घर जैवौ ॥

मिषान्तर दर्शन—

१५५

[विभास

नींद न परी रैनि सगरी मुँदरिया हो मेरी जु गई।
या ही तें झटपटाइ झुकि आई चटपटी जिय में बहुत भई ॥

तुम्हारौ कान्ह पनघट खेलत ही बूझहु महरि हँसि होइ लई ।
बिसरत नहीं नगीनाँ चोखौ ह्वै तें न टरत वे झलक नई ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर चलो मेरे संग दैहौं दूध दधि चाहो जितई ।
मेरी ब जीवनि धन मोही कौं दै हो तव चरन की
चेरी व्हैहौं जुग बितई ॥

१५६

[बिलावल

वैसेंई धर्यो दधि बिना मथनु कियें
देहु जसोमति नेंकु अपनी रई ।
हमारे ह्याँ ढूँढि रही उठि अँधियारे हूँ
पावत न भवन माँहि कहाँ धों गई ॥

कछु न जिय सुहाइ याहि तें आतुर आइ
लौनी के लालच जिय चटपटी भई ।
बाढौ नंद जू कौ राजु दिन चारि करौं काजु
जोलौं ब हमारे आवै बहुरि नई ॥

'चत्रुभुज' दास रानी मेरी अति चोंप जानी
ह्वै प्रसन्न मन महियाँ आनि दई ।
भोर हीं देऊँ असीस बार मति खसो सीस
तुम्हारे गिरिधर की हौं बलि बलि गई ॥

१५७

[देवगंधार

कहा ओछी ह्वै जैहै जाति ।
सुनु जसोमति तुम बडीनु आगें हम छिनु एक कमाति ॥
अति नीकौ सत भाव भलाई जो इह तनु कछु कीजै ।
मात पिता कौ नाँउ लिवावै लोक माँझ जसु लीजै ॥
सासु ननद अरु पार परौसिनि हँसि बहु बार कह्यो ।
तद्यपि मोहि तिहारे घर बिनु नाहिंन परत रह्यो ॥
नित बोलहु संकोच करौ जिनि जब तुम सुन हि न्हवावहु ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल कहँ मोही पें उबटावहु ॥

१५८

[सारंग

कंकन तब ही पें लैहै ।
जेती बार मुरलिका मेरी आनि तहाँ ते दैहै ॥
मुद्रित नैन देखि जतननु कै तें जु अंक तें हरी ।
कीजै सुरति उलटि उतकी दिसि जहाँ ब दुराइ धरी ॥
'चत्रुभुज' प्रभु वा सघन लता में ढूँढत कहूँ न पाऊँ ।
गिरिधर लाल चलहु संग मेरे तुम कहँ ठौर बताऊँ ॥

१५९

[सारंग

सुनहु जसोमति भवन तुम्हारे चित्रे भले चितेरे ।
ऐसे और नहीं काहू कें रही जाचि बहुतेरे ॥

मेरी ओ मथनि बार उनकी उठनी सवार
रई नेत माँट समेत कल हूँ बिसरावै ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर अंग अंग कोटि मदन मूरति
चलत वन कों तन अरु मन कों चितै ही चुरावै ॥

वनक्रीडा—

१६२

[सारंग

टेरत ऊँची टेर गोपाल ।
दूरि गाँइ जिनि जान देहु तुम सब मिलि घेरहु ग्वाल ।
लै लै नामु धूमरी धौरी मुरली मधुर रसाल ।
चढि कदंब चहुँधा चितवत हैं अंबुज नैन बिसाल ॥
स्रवन सुनत सुरभी समुहानी उलटि पिछौंडी चाल ।
'चत्रभुज' प्रभु पीतांबर फेरत गोवर्द्धनधर लाल ॥

१६३

[मलार

सखि देखि री आजु सोभा बन की ।
इत मोहन मुख मधुर मुरलि उत मधुर गरज नव घन की ।
उतहि स्याम बादर सोभित इत राजनि साँवल तन की ।
उत बग पाँति समूह इतहि हारावलि मुक्ता गन की ॥
इतहि रुचिर बनमाल बनी उर उतहि रहनि इंद्र धनु की ।
उत दामिनि चपला चमकति इत फहरनि पीत बसन की ॥

उत घरवा इत धातु चित्र रुचि सुभग श्रीअंग लसन की।
उत बूँदनि द्रुम बेलि सींचति इत प्रेम नीर व्रति मन की ॥
अति आनंद निरखि दोऊ सुख गावनि बिहंगम जन की ॥
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधरन रसिक रस करि बिनवति बिलसन की।

१६४

[केदारौ

ललित व्रजदेस गिरिराज राजें।
घोष-सीमंतिनी संग गिरिवरधरन
करत नित केलि तहँ काम लाजें॥
त्रिविध पवन संचरें सुखद झरना झरें
ललित सौरभ सरस मधुप गाजें॥
ललित तरु फूल फल फलित षट्रितु सदा
'चत्रुभुज' दास गिरिधर समाजें॥

छाक–

१६५

[सारंग

सुंदर सिला खेल की ठौर।
मदन गोपाल जहाँ मध्य नाइक चहुँ दिसि सखा मंडली और॥
बाँटत छाक गोवर्द्धन ऊपर बैठत नाना बहु विधि चौर।
हँसि हँसि भोजन करत परस्पर चाखि लै माँगत कौर॥
कबहूँ बोलत गाँइ सिखर चढि लै-लै नाम धूमरी धौर।
'चत्रुभुज' प्रभु लीला रस रीझत गिरिधरलाल रसिक सिरमौर॥

१६६

[मलार

आरोगत नागर नंदकिसोर ।

चहुँ दिसि तें घन उमड घुमड आए गरजंत हैं घनघोर ॥

नान्हीं नान्हीं बूँदनि बरसन लाग्यौ पवन झकझोर ॥

'चत्रुभुज' प्रभु पातर लै भाजे सघन कुंज की ओर ॥

१६७

[आसावरी

आजु हमारें आओ नॅंद-नंदन अकेले करि बतराऊँगी ।

जो तुम सास ननॅंद सों सकुचौ तो उनि पर-काज पठाउँगी ॥

द्वार कपाट लगाइ जतन सों तन की साध पुराऊँगी ।

करि करि पाक रसाल रसोई अपनें करहि जिमाऊँगी ॥

निसि दिन खेलो मेरे आँगन निरखत नैन सिराऊँगी ।

'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन कों हँसि हँसि कंठ लगाऊँगी ॥

१६८

[सारंग

छाक खाइ बंसीबट फेरि चलत जमुना तट,

जहाँ जाइ धोवत मुख धीर समीरन ।

फेंटि खोलि पोंछत हाथ सखा सब लिए साथ

चले जात बन ही बन खात मुख बीरन ॥

गाँइ बच्छ तहाँ चरत कुसुम नव लता मन हरत
आप बैठे सघन तरु जहाँ बोलत पिक कीरन।
'चत्रभुज' दास के प्रभु सखनि संग गावत सारंग तान
आए मृग बन के स्रवन सुनि सुधि न रही सरीरन॥

१६९

[सारंग

टेरति जसोमति मैया ग्वालिनि छाक लेहु बन जाहु सवारी।
बडी बेर भई है आ कब के पैंडौ देखत कुँवर निहारी॥
बिंजन मीठे खाटे खारे धरे हैं सँवारि परम रुचिकारी।
भरि भरि डलनि अछूते राखे गनत न आवै धरे सुधारी॥
हँसति ग्वालिनी प्रमुदित चित अति चली छाक लिएँ सकुँवारी।
नंदनंदन बैठे हैं जहाँ ही आवत ही ठौर लै आनि उतारी॥
अहो अहो सुबल अहो श्रीदामा बोलहु ग्वालनि अब इक ठाँ री।
जेंवत रामकृष्ण दोउ भैया ग्वाल मंडली सबै सम्हारी॥
गिरि गोवर्धन पर बैठे हँसत परस्पर सब रुचिकारी।
ग्वालिनि रीझि चली ब्रज महियाँ 'चत्रभुज'दास जाइ बलिहारी॥

१७०

[सारंग

तिन में बैठे छाकें खावत मदन रूप मंडली रची।
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन आनि आगें थार सँची॥
एक खात इक हँसत परस्पर सबहिनि के मन में सैनाबैनी मची।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर मुख निरखत ब्रह्मा सुरपति नारद
रहे सब ठाठ ठची॥

१७१

[मलार

बीरी सुबल स्याम कों देत ।
स्याम सखा ग्वालिनि कों बाँटत उपजावत अति हेत ॥
बरखा बरसत तें सब बिडरी गाँइनि की सुधि क्यों नहिं लेत।
'चत्रभुज' प्रभु गिरधरन बजाई मुरली करन सचेत ॥

वेणुगान—

१७२

[सारंग

बेनु धर्‌यो कर गोबिंद गुन निधान ।
जाति हुती बन काज सखिनि संग रही ठगी धुनि सुनत कान ॥
मोहत सहज सकल मृग खग पसु बहु बिधि सप्तक सुर बंधान ।
'चत्रभुज' दास गिरिधर तनु मनु चोरि लियो करि मधुर गान ॥

१७३

[सारंग

पिय पें माँगि पियारी मुरली आपु बजाइ दिखावति ।
सप्तक सुर-बंधान तुमहि ज्यों मोहू पें धौं आवति ॥
गूढ भाव गति लेति ताल जति मंद हि मंद सुनावति ।
ठानति हृदै अनागति हरि सम छिनु-छिनु हँसति हँसावति ॥
अद्भुत भेद मनोहर बानी तान तरंग उपजावति ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर कों रीझै कंठ लगावति ॥

१७४

[मलार

प्यारी के गावत कोकिला मुख मूँदि रही,
पिय के गावत खग नैनाँ रहे मूँदि सब ।
नागरि के रस गिरिधरन रसिक वर,
मुरली मलार रागु अलाप्यो मधुर जब ॥

दंपति तान बंधान सुनहिं ललितादिक,
वारहिं तन मन फेरहिं अंचल तब ।
'चत्रुभुज' प्रभु कौ निरखि मुख दंपति,
कहति कहा धौं कीजे जाइ भवन अब ॥

१७५

[सारंग

ऐसें हि मो हू क्यों न सिखावहु ।
जैसें मधुर-मधुर कल मोहन तुम मुरलिका बजावहु ॥

सारंग राग सरस नंदनंदन सजि सप्तक सुर गावहु ।
तान बंधान सुजान सहज में बहुत अनागत लावहु ॥
श्रुति संगीत करी परिमिति ताहू में अतित बढावहु ।
खग मृग पसु कुलबधू देव मुनि सब की गति बिसरावहु ॥

'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर गुन सागर जो इह तुम न बतावहु ।
तौ बहुर्‌यों आपु ही अधर धरि सुधा श्रवन पुट प्यावहु ॥

१७६

[सारंग

नेंक सुनावहु हो उहि रीति ।
जिहि बिधि अमृत प्याइ श्रवन पुट सरबसु लीनो जीति ॥
ज्यौं बन सहज एक दिन मोहन टेरि कही मधु बानी ।
खग मृग मोहि जुवति जन मन बृति आकरखन करि आनी ॥
लाग्यो ध्यान 'चतुर्भुज' प्रभु मोहिं तुम्हारे बेनु रसाल ।
राखहु सदा अधर धरें सन्मुख सुख निधि गिरिधरलाल ॥

१७७

[केदारो

राधिका रवन की मुरलिका श्रवन सुनि,
भवन सब काज तजि गवन कियो भामिनी ।
नाद बस बिबस भई आन गति छूटि गई
बिपिन आतुर मिली रूप अभिरामिनी ॥
निकट पिय कें गई रसिक वर गहि लई
गिरिधरन स्याम घन जुवति सौदामिनी ।
करहि बासर केलि कंठ भुज वर मेलि
चतुर संग 'चतुर्भुजदास' की स्वामिनी ॥

१७८

[केदार

मेरी आली बंसी बस हौं भई ।
मधुर चारु धुनि श्रवन प्रवेसित कठिन ठगौरी परि गई ॥

खग रसना रस चाखि बदन पर बैठे निमिषनि मारि ।
चाखत ही फल परे चोंच तें रहे जु पंख पसारि री ॥
सुर नर देव असुर नर मोहे छायो व्योम बिमान ।
'चत्रुभुज' दास कहे कौन बस या मुरली की तान री ॥

१८०

[बिलावल

वे मोहन बंसी तेरी जानी ।
ए बेपीर पीर नहिं जानति बात करत मनमानी ॥
आपुन ही तन छेद कराए नेकु न जिय हैरानी ।
ताही तें बस भयो सॉवरो करत अधर रस पानी ॥
लोक लाज कुल-कान तजी सब बोलति अमृत बानी ।
'चत्रुभुज' दास जदुपति प्रभु की यातें भई पटरानी ॥

स्वरूप-वर्णन—(श्री प्रभु कौ)

१८१

[बिलावल

माई री आजु औरु कालिह औरु प्रति छिनु औंर हिं औरु
देखिये रसिक गिरिराजधरन ।
नित प्रति नव छबि बरनें सो कौन कबि
नित हीं सिंगारु बागे बरन बरन ॥
स्याम तन अंग अंग मोहत कोटि अनंग
उपजी सोभा तरंग विश्व के मनु हरन ।
'चत्रुभुज' प्रभु कौ रूप सुधा नैनपुट
पान कीजै जीजै रहिये सदाई सरन ॥

१८२

[धनाश्री

वैभव मूरति मैं जब निहारी।
खंजन कमल कुरंग कोटि सत ताही छिनु डारे जू वारी॥
बिद्रुम अरु बंधूक बिंब सत कोटि त्याग करि जिय में बिचारी।
दारयो दामिनि कुंद कोटि सत दूरि किये रुचि गर्ब टारी॥
तिल प्रसून सत कोटि मधुप सत कोटि हीन पारे भानु मारी।
धनुष कोटि सत मदन कोटि सत कोटि चंद न्यौछावरि उतारी॥
को गावै को परमिति पावै कहाँक लगु कहिए बिस्तारी।
दास 'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर के अंग अंग सोभा अमी सिंधु वारी॥

१८३

[धनाश्री

गोपाल कौ मुखारबिंद जिय में बिचारौं।
कोटि भानु कोटि चंद्र मदन कोटि वारौं॥
कमल नैन चारु बैन मधुर हास सोहै।
बंकट अवलोकनि पर जुवती सब मोहै॥
धर्म, अर्थ काम मोक्ष सब सुख के दाता।
'चत्रुभुज' प्रभु गोवर्द्धनधर गोकुल के त्राता॥

१८४

[धनाश्री

गोपाल कौ मुखारबिंद देखि न अघाई।
तन मन त्रै ताप तिमिर निरखतहि नसाई।

सरस सर सरोज सुधा नैननि भरि पाई ।
सुख समुद्र सोभा मो पें कही न जाई ॥

धरम करम लोक-लाज सुत पति तजि आई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मैं जाच्यों मेरी माई ॥

१८५

[सारंग

बलिहारी हौं चारु कपोलनु की ।
छिनु छिनु में प्रतिबिंब अधिक छबि झलकनि कुंडल लोलनु की ॥

बदन सरोज निकट कुंचित कच भाँति मधुप के टोलनु की ।
दारयो दसन कहनि हसि कें कछु अति मृदु मीठे बोलनु की ॥

मृगमद तिलक भृकुटि बिच राजनि सिर चंद्रिका अमोलनु की ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर सुख बरसत चितवनि नैन सलोलनु की ॥

१८६

[सारंग

नीकी बानक गिरिधरलाल की ।
सहज सु माँझ हरत हँसि सरबसु चितवनि नैन बिसाल की ॥

लटपटि पाग तिलक मृगमद रुचि अनुपम भृकुटी भाल की ।
कुंडल कल प्रतिबिंब कपोलनि उर राजनि बनमाल की ।

कोटि काम बिथकित छबि निरखत सुंदर स्याम तमाल की ।
'चत्रुभुज' दास गडी उर में छबि मोहन मदन गोपाल की ॥

१८७

[सारंग

सुभग सिंगार निरखि मोहन कौ
दर्पन लै कर पिय हिं दिखावत ।
आपुन नेंकु निहारहु बलि गई
आजु की छबि कछु कहत न आवत ॥
भूषन बसन रहे ठनि ठाउँ ठाउँ
अंग-अंग सोभा चित हिं चुरावत ।
बार-बार पुलकित तन सुंदरि
फूलनि रचि रचि पाग बनावत ॥
अंचर फेरि करति न्योंछावरि
तन मन अति अभिलाखु बढावत ।
'चत्रभुज प्रभु' गिरिधर कौ रूप रस
पिवत नयन पुट तृपति न पावत ॥

१८८

[नट

लाडिले ललित लाल वारी हो वारी
हौं आजु की या [illegible]क पर ।
तिपेची पाग टेढी सोहति स्याम धारी
कुलह झूल फूलनु भरी सुमर ॥

भूषन बसन और कहों ठौर ठौर
बंक बिलोकनि बेनु लेनि कर ।
'चत्रुभुज' प्रभु उर नैननु मींचि सिरावत
रूप सुधा रस लालनु गोवर्द्धनधर ॥

१८९

[कानरौ

आजु सखी गिरिधरन लाल सिर पाग लपेटा भली रही फबि ।
टेढी भाँति रुचिर भृकुटी पर देखत कोटिक काम गए दबि ॥
बंदन भुरकि छिरकि केसरि-पुट एक चंद्रिका लगि अद्भुत छबि ।
कुंचित केस सुदेस कमल पर मनि मैं कुंडल तेज छिप्यो रबि ॥
बर अबतंस कपोल नासिका चारु चिबुक कहा कहों और छबि ।
'चत्रुभुज' प्रभु रस रासि रसिक की बानक बरनै को ऐसौ कबि ॥

१९०

[कानरौ

पाग सोहै लटपटी गुलाब के फूल कुलह भरे ।
भृकुटी बिलास हास कुंडल कपोल झाँई
कोटिक मनमथ मन हरे ॥
कुंचित केस सुदेस तिलक रुचिर माल
उर माल मोतिनु की बीच अपेप करे ।
'चत्रुभुज' दास प्रभु गिरिधर ऐसी बिधि
देखे ठाढे मुरली अधर धरे ॥

१९१

[बिलावल

आजु गोपाल-छबि अधिक बनी ।
जरकसी पाग केसरिया वागौ उर राजत गिरिधर कें मनी ।
सूथन लाल छपैरी सोहै अरु सौधें सों भींजी तनी ॥
'चत्रुभुज' लाल गिरिधर की कवि पै छबि जात गनी ॥

१९२

[आसावरी

देखौ माई सुंदरता कौ पुंज ।
अंग अंग प्रति अमृत माधुरी देखि मदन भयौ लुंज ॥
नख सिख सुभग सिंगार बन्यौ है सोभा मनि गन रुंज ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल सिर लाल टिपारौ गुंज ॥

१९३

[सारंग

मदनमोहन आजु नट भेष किएँ ।
काछी कॉछ पीतपट बाँधें उर गज मोतिनि हार हिएँ ॥
कुंडल लोल कपोल झलमले मृगमद तिलक सुभाल दिएँ ।
मोरपच्छ वन धातु विचित्रित ब्रज लरिकनि कों संग लिएँ ॥
सप्तरंध सुर वेनु बजावत अधरामृत रस आप पिएँ ।
'चत्रुभुज'के प्रभु स्यामसुंदर कों देखि मधुर मुख ब्रज सबहि जिएँ ॥

१९४

[सारंग

मनमोहन पगिया आज की ।
बाँधे पेंच सँवारे साँवरे अति सुंदर बड साज की ॥
कहि न सकत शृंगार हार के अरु गुंजा बनमाल की ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरनलाल छबि नीकी नैन बिसाल की ॥

१९५

[मलार

सखी री ठाढे हैं नँद-नंदन ।
कदम डोर कौ छतना बनायौ करत केलि गिरिधरन ॥
पियरे बसन पहिरें अति सुंदर मोतिनि माल गरे ढरन ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर जू की बानिक देखत हैं द्रग भरन ॥

(स्वरूप-वर्णन श्रीस्वामिनीजी)-

१९६

[आसावरी

तूँ देखि सुता बृषभान की ।
मृग नैनी सुंदरि सोभा निधि अंग अंग अद्भुत ठान की ॥
गौर बरन में कांति बदन की सरद चंद उनमान की ।
बिश्व मोहिनी बाल दसा में कटि केहरि सु बंधान की ॥
बिधि की सृष्टि न होइ मानहुँ इह बानक औरै बान की ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर लाइक इह प्रगटी जोटि समान की ॥

१९७

[धनाश्री

आजु तन बसन औरसी चटक।
सोभा देत सरस सुंदरि इह चलनि हंस गज लटक ॥
स्याम सरोज नैन तेरे षट्पद पियौ रूप रस गटक।
तृपित भए अंग अंग फूलनि मन गई बिरह की खटक ॥
कुंज भवन तें चली निडर तजि लोक-लाज की अटक।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नागर सों लै बन रति रन झटक ॥

१९८

[जैतश्री

नैन कुरंगी रति रस माते फिरत तरल अनियारे।
नवल किसोर स्याम घन तन बन, पाए हैं नव निधि बारे ॥
नाना बरन भए सुख पोखे स्याम सेत रतनारे।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन कृपा रंग रँगि रचि रुचिर सँवारे ॥

१९९

[सारंग

तो कों री स्याम कंचुकी सोहै।
लहँगा पीत रँगमगी सारी उपमा कों ह्याँ को है ॥
चिबुक बिंदु बर खुँभी नैन अंजन धरि कें अब जोहै।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नागर कौ चितै चतुरि मन मोहै ॥

२००

[कल्याण

सहज उरज पर छूटि रही लट ।
कनक लता तें उतरि भुवंगिनि अमृत
पान मानों करति कनक घट ॥
चितवनि चारु सोहै देखें त्रैलोक मोहै
चिबुक बिंदु वर अधर निकट ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन रँगी रंग
अति विचित्र गृह कुंज जमुन तट ॥

२०१

[सारंग

कहि धौं कुँवरि कहाँ ते आई ।
को है ऐसी हितू हमारी जिन तूँ साजि सिंगार पठाई ॥
खेलति हुती नंद द्वारे पें तब जसोमति दै सैन बुलाई ।
निकसी भवन तें लै गडुआ कर अरघ दैंन आतुर उठि धाई ॥
अपने सुत के अंग परस करि मो कों नव सारी पहिराई ।
राई लोंन उतारि दहों दिसि अति सनेह लै कंठ लगाई ॥
जननी सीधु सुता पें लै करि तब इह बात बृषभान सुनाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन जानि करु
इह जोरी सबहिनि मन भाई ॥

२०२

[सारंग

सारंग नैनी सारंग गावै ।

तनसुख सारी पहरि झीनी अति मधुर मधुर सुर बीन बजावै ॥

अंजन नैन आँजि बिंदुली दै सैन बैन दृढ बान चलावै ।

'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल कें चित अति रति अंतर उपजावैं ॥

२०३

[केदारौ

बेनी सुंदर स्याम गुही री ।

राजति रुचिर सीस प्यारी कें चंपक और जुही री ॥

नखसिख लों पहरावत भूषन दै बीरी मुख ही है (री) ।

'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल कें सुख की रासि गही है (री) ॥

युगलस्वरूप—वर्णन—

२०४

[बिलावल

आजु सिंगारु निरखि स्यामा कौ
नीकौ बनौ स्याम मन भावत ॥
यह छबि तन ही लिखायौ चाहत
कर गहिके नखचंद दिखावत ॥
मुख जोरें प्रतिबिंब बिराजत
निरखि निरखि मन में मुसिकावत ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर श्रीराधा
अरस परस दोउ रीझि रिझावत ॥

२०५

[मलार

आजु माई पीतांबर फहरावत ।
स्यामा स्याम अधिक छबि लागत साँवरे गोरे गात ॥
कुंडल लोल कपोल बिराजत लाल पाग सरसात ।
'चत्रुभुज' प्रभु की बानिक निरखत सोभा बरनी न जात ॥

२०६

[बिलावल

कुसुम-सेज मधि करत सिंगार ।
प्यारो पियहिं फुलेल लगावत
कोमल कर सुरझावत बार ॥
चंदन घिसि अँग मज्जन कीनों
जमुना-जल-झारी भरत डारत धार ॥
न्हाइ बहोरि अँगोछि अंग कों
सरस बसन पहिरावत टार ॥
पीत पिछोरी बाँधि फेंट कसि
तापर कटि किंकिनि झनकार ।
फेंटा पीत सीस पर बाँध्यों कसि
दुहुँ दिसि लटकत अलक परे घुँघरार ॥
दोऊ पग नूपुर धुनि बाजति
कंठ गोप, मनि मुक्ता हार ।
बाजूबंद जटित कर पहुँची
पुष्पनि माल बनी सुभ सार ॥

कुसुमकलीनि कौ मौर बनायौ आई मालिन लै कर थार
'चत्रुभुज' स्यामसुंदर-मुख निरखत पदरज पाइ रह्यो ढँढियार ॥

२०७

[सारंग

नवल निकुंज प्रानप्यारी सँग
बिहरत सुरत-केलि रस उठत झकोरें ।
सीतल पवन सुगंध संचरित बैठे-
दोउ दिऐं भाल चंदन की खोरें ॥

कालिंदी बहत निकट ताकौ अति-
निर्मल जल छिरकत कुंजन में चहुँ ओरें ।
'चत्रुभुज' स्याम तमाल पर लपटी कनकवेलि
मानों रतिरन चढ्यो प्रेम रंग रस बोरें ॥

२०८

[केदारौ

बैठे लाल कुंज-महल में
पिया-सँग करत बिहार ।
रुचिर पल्लव कुसुमनि सैया रची, तापर-
बैठे दोऊ जन बिलसत निरखि मोहे रति मार ॥

हँसत परस्पर करत कलोलें
गावत मधुर मुरली सुर तारि ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर रसलंपट
तैसीये सोहै राधा सकुमारि ॥

२०९

[सारंग

बिहरत कुंज-भवन में माधौ राधा नदी जमुना के तीर।
त्रिविध समीर सुवन घन वरसत चंदन चरचत नीर ॥
हंस चकोर कोकिला बोलत तहाँ भँवरनि की भीर।
पीत बसन वनमाला राजति स्रवननि झलकत हीर ॥
ज्यों गजराज फिरत गजगवनी मत्त भए रनधीर।
'चत्रुभुजदास' विलास वृंदावन मदनमोहन बल-वीर ॥

२१०

[भूपाली

विरहत लाल विहारी दोऊ श्री जमुना के तीरें-तीरें।
त्रिविध समीर सुवन घन वरसत अंसनि पर भुज भीरें-भीरें ॥
केकी कच पीतांबर ओढें कुंडल छवि नग हीरें-हीरें।
मुरली-धुनि सुनि धाईं व्रज-जुवती आपुनहें हरि नीरें-नीरें ॥
मानों मत्त गजराज विराजत धरनि धरत पग धीरें-धीरें।
'चत्रुभुजदास' आनँद सब निरखत लोचन है अति सीरें-सीरें ॥

२११

केदारौ

स्यामाजू देह-दसा तन भूली।
सेज न सोवति आजु स्याम संग प्रेम-हिंडोले झूली ॥
मदनमोहन-मुख कमल देखिके अंग अनंगन फूली।
'चत्रुभुजदास' प्रभु नींवी-बंद खोल्यो द्वै फोंदा मखतूली ॥

२१२

[केदारौ

सुभग सुहाग भरी मानों प्यारी चंपे की-सी माल ।
उर धरें कुंवर रसिक गिरिधर पिय नव बर सुंदरी रगमगी बाल ॥

त्रिविध ताप हरन अजानुबाहु पर तिन में लटकि रही रस बिसाल ।
'चत्रुभुज' अलि गावे सुजस रसमाती श्रीराधिका सुखकेलि
सुखरसाल ॥

२१३

[भैरव

संगम-रस-रंग भरी रसिक नवल नायिका ।
अँग-अँग प्रति सुभग चिन्ह प्रीतम सों मान्यों मैन
घूमत जुगनैन चपल रूप गुननि लायिका ॥

कुम्हिलानों मुख सुदेस, ग्रथित भए सिथिल केस,
नवजीवन नवल वेस, चितवनि सुख-दायिका ॥
'चत्रुभुज' प्रभु रीझे देखि, हरषि-हरषि उर लावत
गिरिवरधर मन भावत, गजगति पिक वायिका ॥

२१४

[सारंग

बैठे हरि नवनिकुंज में जाइ ।
चंपौ फूल्यौ, फूल्यौ निवारो, नव गुलाब अरु जाइ ॥

फूल्यौ नव रस फूल्यौ कुंज सब फूले राधा-राइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु कहें यह सुख नाहीं तीनि भवन ही माँइ ॥

आवनी—

२१५

[पूरवी

गोविंद गिरि चढि टेरत गांइ ।
गांग बुलाईं धूमरि धौरी टेरत बेनु बजाइ ॥
श्रवन नाद, अरु मुख तृन धरि सब चितईं सीस उठाइ ।
प्रेम सुभर व्है हूक मारि चहूं दिसि तें उलटीं धाइ ॥
'चत्रभुज' प्रभु पट पीत लियौ कर आनंद उर न समाइ ।
पोंछत रेनु धेनु के मुख तें गिरिगोवर्द्धनराइ ॥

२१६

[गौरी

देखि सखी ! बन तें बने हरि आवत ।
आगें धेनु रेनु तन मंडित मधुरें बेनु बजावत ॥
सकल सिंगार अनूप बिराजित चितवत चित हिं चुरावत ।
डगमगि चाल ग्वाल-मंडल में मनमथ-कोटि लजावत ॥
सुरभी नांउ परस्पर लै-लै ऊंचै टेर सुनावत ।
हँसि-हँसि हरखि परसि कर सों कर गौरी राग हिं गावत ॥
ललित किसोर ललित लीला-रस मुनि-मन गति बिसरावत ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर नागर ब्रज-जुवतिनि प्रेम्र बढावत ॥

२१७

[गौरी

बलि-बलि लटकनि मराल चाल नंदलाल प्यारे ।
सांझ समै आवत ब्रज गोधन-रखवारे ॥
सीस सोभित मोरचंद्र रचि बिचित्र संवारे,
गोरज मंडित सौभग-निधि अलक घुंघरारे ॥

भाल तिलक, मकर कुंडल, मनिमै झलकारे
भृकुटि चाप मनमथ–सर लोचन अनियारे ।।
मुरली अधर धरें कूजित मंद–मंद सुढारे
सुनत स्रवन खग, मृग, त्रिय सहज मगु बिसारे ।।
बनमाला, पीत बसन, भूषन सुख न्यारे
जुवति--बिरह--तिमिर--हरन अंग--अंग उजारे ।।
ग्वाल–मंडल–मध्य सोभित गोपी–नैंन–तारे
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर पर कोटि मदन वारे ।।

२१८

[गौरी

नंद--नंदन नवल नागर किसोर बर
बन ते बनें व्रज कों आवत लियें धेनु ।
ग्वाल--मंडल--मध्य भेष नट वर सजें
अधर धरें मधुर--मधुर बजावत बेनु ।।
सिरसि राचत रुचिर मयूर की चंद्रिका
पीट पट कटि कसें सकल सोभित ऐनु ।
हारु राजित हियें, मृगमद तिलकु कियें,
सुभग सांवल अंग सुरभि मंडित रेनु ।।
बिमल बारिज बदन, जानि मनसिज सदन,
कुटिल कुंतल अलक आए मधुकर सेनु ।
दसन दामिनि लसत, मंद बारिक हँसत,
बंक चितवनि चारु बिस्व--मनु हरिलेनु ।।

२२१

[गौरी

गांइ लियें बन तें ब्रज आवनि ।
मदनगोपाल ग्वाल--मंडल में मधुर--मधुर कल बेनु बजावनि ॥
गांग बुलाई धूमरि धौरी टेरि लैं नांउ बुलावनि ।
कबहुँक करत बिनोद सखनि मिलि, गौरीरागु परस्पर गावनि ॥
मोर मुकुट गुंजा पीरौ पट सोभित तन गौरज लपटावनि ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल छवि
जुवति-वृंद मनमोद बढावनि ॥

२२२

[कानरो

लटकत चलत जुवति-सुखदानी ।
संध्या समै सखा-मंडल में सोभित तन गोरज लपटानी ॥
मोर मुकट, गुंजा, पीरौ पट, मुख मुरली कूजत मृदु बानी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधारी आए बन तें लै आरती वारति नँदरानी ॥

२२३

[पूर्वी

गोविंद की लटक मोहि भावै री माई ?
रीझि-रीझि गोपी रिझाई ।
सु रहे न चढि-चढि गांइनि टेरत नीकी बेनु बजाई ॥
गांग बुलाई दौरी आई काजर, पियरी, धौरी, लाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल की बानिक सरस सुहाई ॥

२२४

[कानरौ

टेरि हो टेरि कदम चढि दूरि जाति हैं गैयाँ।
तुम्हारी टेर सुनत बगदेंगी पाछैं पीजो घैयाँ॥
आजु हमारी घिरत न घेरी वही जात हैं रैयाँ।
हम तें बहुत तिहारें गोरस हपत कहा हो ? भैयाँ॥
'चत्रुभुज' प्रभु पट पीत लिएँ कर धावत नंद-ढुहैयाँ।
पोंछत रेनु धेनु के मुख कौ गिरिगोवर्धन-रैयाँ॥

२२५

[पूरबी

धौरी, धूमरी, पियरी, पीयर कारी काजर' कहि-कहि हेरें।
बाम भुजा मुरली कर लीन्हें दच्छिन कर पीताम्बर फेरें॥
सुंदर नागर नट कालिंदी के तट लियें लकुट गंयनि हेरें।
हूंकि-हूंकि इकबार गीधी सब धाईं 'चत्रभुज' प्रभु गिरिधारी-नियरें॥

२२६

[गौरी

धेनु लियें सूधे ग्वारिक गये री !
गोरज-मंडित मुख अलकावलि
ब्रजजन-मन इहि छवि बिधि ये री॥
बंसी कटिपर ऊपर बांधें बनज धातु अँग चित्र ठये री।
कौस्तुभमनि बनमाल बहुत उर बरन बरन बिच कुसुम रये री॥
पाग न होइ जसोमति करकी सचित सिथिल फिरि पेच दिये री।
करन फूल पर फूल झूमका दुति संभिलित समतूल भये री॥
लियें लकुटि पचरंग सुरंगी बोलत लै-लै नांउ नये री।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन देखि नंदराय उछंगनि धाइ लिये री॥

आसक्ति—

२२७

[गौरी

अधिक आरति सुनि-सुनि ए नैन ।
समुझाये अति नीर भरतु हैं, कतहि कहत बहु बैन ॥
हुती जु अवधि समोधि गहे कर अब कथि कियो कुचैन ।
चाहत हैं देख्यौ बारक उह बंक भृकुटि की सैन ॥
लै कर कमल 'चत्रुभुज' प्रभु तब मथि पीवत पै फेन ।
जीवहि प्रगट निहारे मधुकर उह गिरिधर मुख ऐन ॥

२२८

[गौरी

ग्वालिनि बाट खरिक की औरै ।
उह सूधौ मगु छांडि कहा तू इत ही कों उठि दौरै ? ॥
चली न जाति सहज अनबोली ठां-ठां बातनि झौरै ।
दूरहि तें ब सुनाइ टेरिकें बोलति धूमरि धौरै ॥
खेलत जहां 'चत्रुभुज' प्रभु फिरि झांकति है ता ठौरै ।
जानति हौं अटक्यौ मनु गिरिधर रसिक राइ सिरमोरै ॥

२२९

[गौरी

जब तें री ! गांइ चरावन जाइ ।
तब धौं कहा नंद-द्वारे पें भूलि रहति उत चाहि ॥

नित इत चलति छांडि सूधौ मगु कहि व काज धौं काहि।
फिरि-फिरि बात कहति ठां ही ठां सूधे धरति न पाइ॥
तजी लोक की लाज खरिकारो बार-बार मुसिकाहि।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर सौं जानति तनु मनु अटक्यो आहि॥

२३०

[गौरी

कब की तूं बार-बार नंद-द्वार उझकति आवति जाति।
संध्या लौं फिरि-फिरि पाउ धारति जानी न जाइ इह भेद बात॥
चैन न होतु भवन अदने में छिनु-छिनु तेरे भाये कलप जात।
गृहपति की कछु कानि न मानति, निसि दिन एकटक ही बिहात॥
कहियतु और कहति कछु औरै लागि रह्यौ मनु एहि घात।
चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधर नागर मन अटक्यो सखि स्यामल गात॥

२३१

[गौरी

नैना अधिक चलबले रहत नहिं चैन।
धावत तकत स्याम-अंबुज-मुख मनहुं मधुप मधु चाहत लैन॥
मानत न घेरे करत चहुंदिसि फेरे नांचत अनेरे लजावत मैन।
'चत्रुभुज[दाम]' प्रभु गिरिधर बस कीने सखि तें गूढ भाव की सैन॥

२३२

[गौरी

देखी मैं तन की गति बन ही में मनु तेरौ।
भीतर भवन हिं क्यों हू न परत पगु,
फिरि-फिरि उलटि करति उतहिं फेरौ॥

'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिवरधर चित चौर्‌यो
मोहन नव रस परसि बांध्यौ कठिन प्रीति जेरौ।
तबहि तें उहां बसे प्रान, तिनु तोरि तज्यौ आन,
जब तें सघन कुंज कियो ब सुरत झेरौ॥

२३३

[गौरी

ठाढी एक बात सुनि धीरी।
भोर हि तें कहा मटुकी लियें डोलति ब्रज--बासिनी अहीरी !॥
'माधौ-माधौ' कहि-कहि टेरति बिसरि गयो तोहि नांउ दही री।
ना जानौं कहुं मिले स्याम घन, इह रट लागि रही री !॥
मोहन-मूरति मनु हरि लीनों नहिं समुझति कछु काहू की कही री !।
'चत्रुभुजदास' बिरह गिरिधर के सब बन फिरति बही री !॥

२३४

[सारंग

खरे सत भाइले गोपाल।
कहत लाउ नीके गुहि देहौं इह मुकता–मनिमाल।
लै कर तें हठि पोवन बैठे करिके कंचन थाल।
कहहु धौं ह्यां कौन निहोरत कतहि पचत नंद–लाल।
'चत्रुभुज' प्रभु अपने पति ज्यों जाचत गृह कौ प्रतिपाल।
गिरिधर रसिक सहज बस कीने चितवनि नैन बिसाल॥

२३५

[जैतश्री

एक हि आंक जपै गोपाल ।
अब इहे तन जानें नहीं सखी! और दूसरी चाल ॥
मात-पिता पति-बंधु बेद-बिधि तजे सबै जंजाल ।
स्याम-सुरूप चित में चुभ्यो परि जो बीते बहु काल ॥
गह्यौ नेमु तिनु तोरि जबै हँसि चितए नैन बिसाल ।
'चत्रुभुजदास' अटल भए उर-घट परसे गिरिधरलाल ॥

२३६

[रामश्री

मन मृग बेध्यो मोहन नैन बान सों ।
गूढ भाव की सैन अचानक तकि तान्यौ भृकुटी कमान सों ॥
प्रथम नाद-बल घेरि निकट लै, मुरली सप्तक सुर-बंधान सों ।
पाछें बंक चितै मधुरें हँसि घात करी उलटि सुठान सों ॥
'चत्रुभुजदास' पीर या तन की मिटत न औषधि आन सों ।
ह्वै है सुख तब ही उर-अंतर आलिंगतों गिरिधर सुजान सों ॥

२३७

[रामकली

बंदूं जो तब हि मान धरि आवै ।
सुंदर स्याम नेकु सन्मुख ह्वै अंबुज वदन दिखावै ॥
तब लगि मान करहु कोउ कैसें जब लगि वह दरसन नहिं पावै ।
दृष्टि परे मानों मधुकर तिहिं छिनु सहज सरोज हिं धावै ॥
त्रिभुवन मांझ होड बदें जुवती आरज-पथ हि ढहावै ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन रसिक सब कुल-मरजाद ढहावै ॥

२३८

[रामग्री

कहत हो ! सबै सयानी बात ।
जौ लौं नाहिंन देखे सुंदरि ! कमल नयन मुसिकात ॥
सब चतुराई बिसरि जाति है, खान-पान की तात ।
बिनु देखें छिनु कल न परति है पल भरि कल्प बिहात ॥
सुनि भामिनि के बचन मनोहर सखि मन अति सकुचात ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधरन लाल-संग सदा बसौं दिन-रात ॥

२३९

[आसावरी

नवल किसोर मैं जु बन पाए ।
नव घन स्याम-कलेवर-वैभो देखत नैन चटपटी लाए ॥
धातु विचित्र काछनी कटि-तट ता महँ पीत बसन लपटाए ।
माथें मोर मुकुट रचि बहु बिधि, उर गुंजा-मनि हार बनाए ॥
तिलक ललाट, नासिका बेसरि, मुख मुरली गुन कहत सुहाए ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधर-तनु मन लियो चोरि मंद मुसिक्याए ॥

२४०

[आसावरी

मथनियां दधि समेत छिटकाई ।
भूलो-सी रहि गई चितै उत किनु न बिलोवन पाई ॥
आंगन व्है निकसे नँद-नंदन नैन की सैन जनाई ।
छांडि नेत कर तें घर तें उठि पाछें ही बन धाई ॥
लोक-लाज अरु बेद-मरजादा सब तन तें बिसराई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मंद हँसि कछुक ठगौरी लाई ॥

२४१

[सारंग

याहि तें फिरति सदा बन खोरी ।
मारगु जात आन जुवती बस करत चित चित-चोरी ॥
कबहुंक मधुर सुनाइ बेनु-सुर राखत इक टक मोरी ।
कबहुंक अंचर गहत मंद हँसि सहज लेत रति जोरी ॥
उलटत नांहि 'चत्रुभुज' प्रभु तजि हारी मन हिं निहोरी ।
बाढी प्रीति लाल गिरिधर सों लोक-वेद-तिनु तोरी ॥

२४२

[सारंग

तब तें जुगसमान पलु जात ।
जा दिन तें देखे सखि ! मोहन मो तन मुरि मुसिकात ॥
दरसन देत ठगौरी मेली कहि न सकी कछु बात ।
बीतत घरी पहर क्रम – क्रम अब कर मोंडत पछितात ॥
हृदै में गडी मदन मूरति मन अटक्यौं सांवल गात ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मिलन कों नैन बहुत अकुलात ॥

२४३

[सारंग

सिर परी ठगौरी सैन की ।
नंदकिसोर जनाई जब तें चारु चितवनी नैन की ॥
मनु बिचक्यो कछु कहत न आवै, मो सुधि बिसरी बैन की ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर-छबि निरखत साट लगी तन मैन की ॥

२४४

[गौरी

बात हिलग की कासों कहिये ।
सुनु री सखी ! बिवस्था तन की
समुझि मनहिं मन चुप करि रहिये ॥
मरमी बिना मरमु को जानें ! इहि बातें सब जिय हीं सहिये ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मिलें जब
सब सुख-संपति तब हीं लहिये ॥

२४५

[गौरी

मोहन मोहनी पढि मेली ।
मुख देखत तन दिसा हिरानी, को घर जाइ सहेली ! ॥
काके तात – मात अरु भ्राता को पति, नेह नवेली ।
काके लोक-लाज अरु कुल-ब्रत को बन भंवति अकेली ॥
याहि तें कहति मूल मत तो सों एक संग नित खेली ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर रस अटकी श्रुति – मरजादा पेली ॥

२४६

[गौरी

गोवर्द्धन बासी सांवरे लाल ! तुम-बिनु रह्यौ न जाइ हो ।
ब्रजराज लडैते लाडिले । ध्रु० ॥
लाल ! बंक चिते मुसिकाइ कें नेंकु सुंदर बदन दिखाइ हो ।
लोचन तलफें मीन ज्यों जुग भरि धरिय विहाइ हो ॥
लाल ! सप्तक सुर-बंधान सों मोहन बेनु बजाइ हो ।
सुरति सुहाई बांधिकें मधुरें-मधुरें गाइ हो ॥
लाल ! रसिक रसीली बोलनी नेंकु गिरि चढि गैयां बुलाइ हो ।
गांग बुलाई धूमरी नेंकु ऊंचे टेरि सुनाइ हो ॥

लाल! दृष्टि परे जा द्यौस तें तब तें रुचे न आन हो।
रयनी नींद न आवही बिसरे भोजन पान हो॥
लाल! दरसन कों नैना तपें बचन सुनन कों कान हो।
मिलिबे कों हियरो तपै मेरे जिय के जीवन-प्रान! हो॥
लाल! मन अभिलाषा यों रहे लागै न नैन-निमेष हो।
इक टक देखौं भावनौ नागर नटवर भेष हो॥
लाल! लोक-लाज कुल बेद की, छांडे सकल बिबेक हो।
कमल कली रवि सों बढी छिनु-छिनु प्रीति बिसेख हो॥
लाल! इह रट लागी लाडिले जैसें चातक मोर हो।
प्रेम-नीर बरखाइये नव घन नंद-किसोर हो॥
लाल! पूरन ससि मुख देखिकें चितु चिहुट्यो इहि ओर हो।
रूप-सुधा रस-पान कों सादर कुमुद चकोर हो॥
लाल! मनमथ कोटिक वारनें निरखि डगमगी चाल हो।
जुवती-जन-मन-फंदना अंबुज नैन बिसाल हो॥
लाल! कुंज-महल क्रीडा करी सुख-निधि मदन गोपाल हो।
हम वृंदाबन मालती तुम भोगी भौंर भुवाल हो॥
लाल! जुग-जुग अविचल राजियो इहि सुख सैल-निवास हो।
श्री गिरिवरधर के रूप पर बलि जाइ 'चत्रुभुजदास' हो॥

२४७

[कल्याण

ठगोरी मेलि गए सैन की।
बन गवनत व्रजनाथ जनाई चितवनि चपल नैन की॥
अकबक रहि कछु कहत न आयौ मो सुधि भूलि बैन की।
'दास चत्रुभुज' प्रभु गिरिवरधर मूरति कोटिक मैन की॥

२४८

[कल्याण

छूटि गई मोतिनि-लर कर तें देखत स्यामसुंदर नवल किसोरैं।
रहि गई चितै चितेरी जैसें, चितवति इत मोहन चित चोरैं॥
डगमगी चाल मृगमद को तिलकु भाल,
टेढी पाग बागौ बन्यो फेंटा छबि छोरैं।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर कोटि मैन मोहै,
सैन दै जनावै जब नैन की कोरैं॥

२४९

[कानरो

सब व्रत भंग भए तब तें सखि! एकै व्रत निश्चै करि लीयो।
आवत खरिक खोरि नँद-नंदन आइ अचानक दरसनु दीयो॥
डर कुल-कानि लोक-अपकीरति मानहुं निरखि संकल्पु कीयो।
मदन गोपाल मनोहर मूरति नव रस सींचि सिरायो हीयो॥
बिसन परयो संतत नित चाहत रूप-सुधा लोचन-पुट पीयो।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर की बानक देखे-बिनु न परत मोपे जीयो॥

२५०

[बिलावल

भूल्यो री! दधि कौ मथन करिबौ।
देखत रसिक नंद-नंदन कौ डगमगे पगु धरिबौ॥
रहि गई चितै चित्र जैसें इकटक नैन निमेष न परिबौ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन जनायो नांही, मो-मन मानिकु हरिबौ॥

२५१

[धनाश्री

मोती तेही ठां सब गारे ।
तब ही तें रहि गई एकटक जब ब्रजनाथ निहारे ॥
अध पोवत में स्याम मनोहर निकसे आइ सकारे ।
आधी लर कर लै ब चली उठि जित गोपाल सिधारे ॥
'दास चतुर्भुज' प्रभु चित चोरयो सु घर के काज बिसारे ।
गिरिधरलाल भेटि बन में तृन तोरि सबै ब्रत टारे ॥

२५२

[धनाश्री

महा चित-चोर नयन की कोर ।
लाज गई, घूंघट पट भूल्यो, जब चितए इहिं ओर ॥
वे सखि ! सिंहद्वार हुते ठाढे, हौं खरिक चली उठि भोर ।
दै कर सैन मैन-सर मारी नागर नंद-किसोर ॥
कमल, मीन, मृग, खंजन दै न सकी उपमा कहं जोर ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर-मुखबिधु ए अंखियां भईं चकोर ॥

२५३

[धनाश्री

नैननि ऐसीये बानि परी ।
बिनु देखें गिरिधरनलाल–मुख जुग–भर गनत घरी ॥
मारग जात उलटि चपलनु मोहन तन दृष्टि परी ।
तब ही तें लागी जक इकटक निमि–मरजाद टरी ॥
'चत्रुभुजदास' छुडावन कों हठु मैं विधि बहुत करी ।
स्वों सरबसु हरि कों हरि दीनो देह-दसा बिसरी ॥

२५४

[धनाश्री

कहावत जो गोकुल गोपाल !
ते मैं आजु दृष्टि देखे सखि! चलत डगमगी चाल ॥
पहुनाचार करन गई ही सजन-हेत प्रतिपाल।
ओचक हीं मिलि गए नंद-सुत अंग-अंग रूप रसाल ॥
तन घनस्याम पीत पट ओंढें, उर राजति वनमाल।
मोर मुकुट, मुरली कर लीनें, चितवनि नैन बिसाल ॥
'चत्रुभुजदास' रासि सब सुख की, सोभा भृकुटी भाल।
तन बिसरयौ मन हरयौ मनोहर गोवर्द्धनधर लाल ॥

२५५

[धनाश्री

बदन चंद के रूप-रस में मम लोचन चकोर कियो चाहत पान।
तृषावंत अति सहत न अंतर गहत नांहि छिनु समाधान ॥
निसि-दिन इकटक रहें निहारत आगें तें न टरहु कीजे इह बंधान।
'चत्रुभुजदास' प्रभु पूरहु मनोरथ रसिक-राइ गिरिधरन सुजान ॥

२५६

[धनाश्री

चितवत आपु हि भयो चितेरौ।
मंदिर लिखत छांडी हरि अकबक देखत हैं मुख तेरौ ॥
मानहुं ठगी परी जक इकटक इत-उत करति न फेरौ।
और न कछू सुनति समुझति कोउ स्रवन निकट व्है टेरौ ॥
'चत्रुभुज' प्रभु मग काहू न पारयौ कठिन काम कौ घेरौ।
गोवर्द्धनधर स्याम सिंधु-मॅह परयौ प्रान कौ बेरौ ॥

२५७

[धनाश्री

अब हौं कहा करों री माई ! ।
जब तें दृष्टि परे नँद-नंदन पल भरि रह्यौ न जाई ॥
भीतर मात-पिता मोहि त्रासत-'तें कुल गारि लगाई'।
बाहिर सब मुख जोरि कहत हैं 'कान्ह-सनेहिनि आई' ॥
निसि बासर मोहि कल न परति है घर आंगन न सुहाई ।
'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधरन छबीले हँसि चितु लियो चुराई ॥

२५८

[धनाश्री

गोरस बेचत आपु बिकानी ।
भवन गोपाल मनोहर मूरति मोही तुम्हारी बानी ॥
अंग-अंग प्रति भूलि सहेली ! मैं चातुरि कछुवे न (हिं) जानी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मन अटक्यौ तन मन हेत हिरानी ॥

२५९

[बिहागरो

हौं तो भवन आपनें जाति ।
मारग में मिलि गए श्यामघन व्है गई आधी राति ॥
का कें मात-तात अरु कुल-ब्रतु कासों कहिए बाति ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मिले तें सबै भूलि गई साति ॥

२६०

[जैतश्री

तेरी माई ! लागति हौं री पैयां ।
इकटक बात कहौं मोहन की आलीरी ! लेहुं बलैयां ॥

या गोकुल विधि सेंदिन कीने आपु चरावत गैयां।
निघटाए निघटत नहीं सजनी ! घरी-घरी जुग भैयां॥
छिनु-छिनु-छिनु व्रज तें बाहिर व्है बूझति जाय लुगैयां।
गोरज-छुरित-अलक कहुं देख्यो आवत कुंवर कन्हैयां॥
कछु न सुहाइ ताहि बिनु देखें सुत-पति-पिता न मैयां।
'चत्रुभुज' प्रभु देखे ही जीजै गोवर्धनधर रैयां॥

२६१

[जैतश्री

जसोमति ढूंढति है गोपाले।
कहुं देख्यो मेरौ अलक लडैतो खेलत हो संग बाले॥
इत-उत हेरि रही नहीं पावति सुंदर स्याम तमाले।
चकित नैन अतिसै अकुलानी भई-भई बेहाले॥
सांवरे वरन, पीत सी झगुली, कच लर लटकत भाले।
पगु पेंजनी कुनित कहुं देख्यो चाल सु राजमराले॥
घर-घर टेरि कहति कहुं देख्यौ बूझति गोपी-ग्वाले।
जो मेरा छगन मगन हि दिखावै ताहि देहुं उर-माले॥
काहू व्रज-सुंदरि लै राख्यौ निज-गृह नैनबिसाले।
नंदराइ जू कों आनि दिखावौ सुंदर रूप रसाले॥
गए प्रान मानों फिर आए लियो उछंग उताले।
चूमति नैन, सीस, मुख, ठोडी अरु चूमति दोउ गाले॥
निज-गृह आनि करी न्योछावरि तन, मन, धन, इहि काले।
'चत्रुभुज' प्रभु कों खेलत जानें ज्यों आवत गिरिधर लाले॥

२६२

[सूहा

अब मेरे तन की तपति बुझाई।
बिदा भई ग्रीषम-रितु आली ! अब बरषा-रितु आई ॥
अब मेरे गृह आवेंगे प्रीतम तब हौं करौंगी बधाई।
नानाविध के सजिके भूषन विरहे पीर मिटाई ॥
आज कौ दिन धनि-धनि री सजनी ! पुहुप-सुबास छवाई।
'चत्रभुज' प्रभु लळना पाँव धारे अंगना चौक पुराई ॥

२६३

[टोडी

अरी ! चितचोर चितै चित चोरत नैन की सैन चपल दै थोरी।
खेलत, हँसत, पीत पट झटकत, संग सखा लीन्हें ब्रज-खोरी ॥
गिरिधर-रूप अनूप निहारी अब भई ज्यों गुडिया बस डोरी।
'चत्रभुज'दास कमलमुख निरखति अधर
टगी लगी ज्यों चंद्र चकोरी ॥

२६४

[टोडी

इंडुरिया तू डारि दै हो लंगर ढीठ कन्हाई !।
तेरौ कोऊ कहा करेगो ! हमें घर खीजेगी माई ॥
कौन हवाल किये हरि ? मेरे भली भांति मेरी दधि खाई।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिरन चाहि चित मेरो मन लियो चुराई ॥

२६५

[टोडी

उलटि फिरि-फिरि आवत निज द्वार ।
गृह-आगम न सुहाइ तब तें देखे नंदकुमार ॥
सुंदर स्याम कमल-दललोचन सोभा-सिंधु अपार ।
ता दिन तें आतुर भए मग-तन चितवत बार-बार ॥
भोर भवन तें निकसे मोहन चलनि गयंद-कुमार ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मिलन कौं करत अनेक बिचार ॥

२६६

[ललित

कहां तें लाए हो ? इनि साथ ।
जे अलि निपुन बसत तुम्हरे सँग
मधुर गंध लै और जु भाखत गावत गुन-गर-गाथ ॥
हम तुम सौं सूधी व्है बूझति तुम उलटे ही तरजत हम सौं
हमनु कहा भरि लीन्हे बाथ ।
ब्रजपति रसिक रसिक तुम दोऊ वे हू रसिक जिनि कीन्हें
'चत्रुभुज' सुनि पिया गोकुलनाथ ॥

२६७

[टोडी

जब तें सखी ! हो आई अचानक
गिरिधरलाल जो वदन दिखायौ ।
मोहन-रूप अनूप हरयौ मन
मांझ कुटुम्ब सबै बिसरायौ ॥
सो मुख देखि-देखि हौं नाची
जिनि नैननि भी सैन नचायौ ।
'चत्रुभुजदास' जो सर्बसु लैके
लोक कुटुम्ब पछोरि बहायौ ॥

२६८

[बिलावल

देखो री ? नंदलाल की बातें ।
दधि माखन खायौ मेरी सजनी !
सांकरि खौरि निकसि गयौ प्रातें ।।
कालि गई हौं खरिक दुहावन
भाजन फोरि चल्यौ भरि हाथें ।
'चत्रभुजदास' लज्जित भई ग्वालिनि
कहत हैं भरि बाथें ।।

२६९

[गौरी

या मोहन पे मोहिनी जिनि मोह्यौ सब संसार ।
जो नीकें के जानि है जाहि विसर्यौ गृह–व्यौपार ।।
वारे तें इतनी भई देख्यौ सब व्यौपार ।
उलटी रीति व्रज में भई ए चली अनोखी चाल ।।
जमुना-जल भरिबे गई मेरे ढिंग ठाढौ भयौ आइ ।
डगमग पग घर कों धरौं मेरे परे हैं पिछोरे पॉइ ।।
वंसीवट जमुना तटें किये सप्तसुर राग ।
पाहन पिगरे, तरु नए, मोहे खग मृग नाग ।।
मोहे जीव जेते ते ते सब ब्रज भयौ लौलीन ।
एक लली वृषभानु की जिनि उलटि किये आधीन ।।
चितवृति अटक्यौ रूप में लज्जा धरी उतारि ।
'चत्रभुज' प्रभु चित चोरिके जाइ अटके कुंज मंझारि ।।

२७०

[धनाश्री

मनमोहन मूरति नैननि में गडी।

....

लोचन पिय के पारधी हो तीछन होय कमान।
बंक विलोकनि चित बसी घट घूमत धाए प्रान ॥
लोग कहन लाग्यो कछु हो मैं न तज्यौ मुख मौन।
हियो चाहत हिय सों मिल्यौ, भुज चाहै चतुर्भुज हौन ॥

२७१

[धनाश्री

माई ? मेरो माधौ सों मन मान्यौ।
अपनो तन औ कमल नैन कौ एक ठौर लै सान्यौ ॥
एक गोविंदचंद के कारन
बैरु सबनि सों ठान्यौ ॥
लोक-लाज कुल-कानि सबै तजि
मैं अप न्योत घर आन्यौ ॥
अब कैसे बिलगु होइ मेरो सजनी !
दूध मिल्यौ जैसे पान्यौ।
'चत्रभुज' प्रभु मिलि हौं गिरिधर सों
पहिले की पहिचांन्यौ ॥

२७२

[ईमन

सखी ! नंदकौ नंदन साँवरौ मेरौ चित चोरै जाइ री !
रूप अनूप दिखाइके सखि ! गयो है अचानक आइ री ! ॥

टेढी चलनि मधुर चंचल गति, टेढे नैननि चाइ री ।
टेढोई कछु व्है रहै सखी! मधुरे बेनु बजाइ री ॥
कानन कुंडल मोर मुकुट सखि! सोभा वरनि न जाइ री ।
'चत्रुभुज' प्रभु प्रान कौ प्यारौ, सब रसिकनि कौ राइ री ॥

गोदोहन—

२७३

[बिलावल

कर लै निकसी घन दोहनी ।
भोर हि स्याम-बदन देखन कों आलस अंग, छबि सोहनी ॥
मनु सोभा-निधि मथिके काढी मनसिज-मन कों मोहनी ।
खरिक के डगर चली हित-पागी रसिक कुंवर के गोहनी ॥
गांइ दुहावन के मिस नव तिय नंद-नंदन मुख-जोहनी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल की चितवनि मृदु मुसिकोहनी ॥

२७४

[सारंग

मोहन पूरे हो सतभाइ ।
कहत ल्याउ नीकें दुहि दैहों ग्वालि! तुम्हारी गांइ ॥
आतुर व्है दोहनी कनक की कर तें लीनी आइ ।
दै 'धौ बेगि पाट की नोई बछरा चौखें जाइ ॥
हँसि-हँसि दुहत रु कहत रसीली बातें बहुत बनाइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु सहज हि रति जोरी गिरि गोवर्द्धनराइ ॥

२७५

[गौरी

देहु री माई ! खरिक जान, गो-दोहन की टरति बार ।
पराई अरप तुम जानति नाहिंनें बात हि बात ओति अति अबार ।।
कछु न जिय सुहाइ, जो लौं न दुहाउं गाइ,
याही तें अगमनि आइ रहौं बछरानु द्वार ।
गोरस छीजै हमारे, कान्ह जू कहूं सिधारे,
चतुर-सिरोमनि दोहनहार ।।
गही बेगि दोहनी, पढि मेली मोहनी,
'चत्रुभुज' प्रभु बातें कहि सुढार ।
मनु न रहत चैन, छिनु बिनु देखें नैन,
गिरिवरधर सब सुख-उदार ।।

२७६

[गौरी

कान्ह दुहि दीजै हमारी गैया ।
तुम हिं जानि सतभाइ लै नित मोहिं पठावत मैया ।।
सब कोउ कहत परम उपकारी संकरषन के लहुरे भैया ।
गहहु कमलकर दोहनी नंद-नंदन ! लेउं बलैया ।।
तुम्हारे दुहत हमारें पूजत बहुतें दधि बहुतें घृत-घैया ।
'चत्रुभुज' प्रभु नित करहु कृपा इहि गिरिगोवर्द्धन रैया ।।

२७७

[गौरी

जा दिन तें गैयां दुहि दीनी ।
ता दिन तें आपकौ आप हिं; मानहुं चितै ठगौरी लीनी ।।

सहज स्याम-कर धरी दोहनी, दूध-लोभ-मिस बनती कीनी ।
मृदु मुसक्याइ चितै कछु बोले ग्वालिनि निरखि प्रेम-रस भीनी ।
नितप्रति खरिक सकारिये आवति, लोक-लाज मानों 'घृतसों पीनी' ।
'चत्रभुज'प्रभु गिरिधर मनमोहन, दरसन छल बल सुधि-बुधि लींनी ॥

२७८

[नट

चितवनि में चितु चोरचो री माई ? ।
कर दोहनी लियें नंद-नंदन खरिक जाति जब पाई ॥
ठाढे रहे दसन अंगुरी दे ज्यों-ज्यों गांइ दुहाई ।
उलटे लकुट बिसारि भए संग याचन सुंदरताई ॥
बारंबार 'चत्रभुज' प्रभु सखि ! श्रीमुख कहत बडाई ।
जोवत पंथ रसिक गिरिवरधर सघन बेलि जहां छाई ॥

२७९

[गौरी

लटकति फिरति दोहनी लै री ।
अनोखी गां दुहावनहारी, कान्हे पौरी पैठन दै री ॥
बन तें आवत भई न बिरियां बासर स्रम तन नेंकु चितै री ? ।
तोहिं न दोस नए हित की गति, कठिन हिलग को ऐसो है री ॥
तुव दृग चंचल, अंबुजवदनी ! दरसन-हानि न नेंकु सहै री ।
'चत्रभुजदास' लाल गिरिधर कौं तें चितु चोरचौ मृदु मुसिकै री ॥

२८०

[गौरी

ग्वालिनि ! अजहूं बन में गांइ ।
होन न देति बार दोहन की चलति सकारचौ धाइ ॥

ले दोहनी खरिक-मिस खोरति ऊतरु कहति बनाइ ।
नंद-द्वार फिरि-फिरि झांकति इहि बात न जानी जाइ ॥
समुझति हौं तूं लाल-मिलन कों करति है एते उपाइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नागर मन मानिक लियौ चुराइ ॥

२८१

[सारंग

तब तें और न कछु सुहाइ ।
सुंदर स्याम जबहि तैं देखे खरिक दुहावत गांइ ॥
आवति हुती चली मारग सखि ! हौं अपने सतभाइ ।
मदन गोपाल देखिके इकटक रही ठगी मुरझाइ ॥
बिसरी लोक-लाज गृह-कारज बंधु पिता अरु माइ ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवरधर तनु-मनु लियौ चुराइ ॥

२८२

[गौरी

कहा री ! सखी तोहिं लागी ढौरी ?
संध्या समै खरिक वीथिनि में
इत उत झांकति डोलति दौरी ॥
कबहुँक हँसति कबहुँ कछु बोलति
चंचल बुधि नांहिन इक ठौरी ।
कबहुँक कर-तल ताल बजावति
कबहुँक रागु अलापति गौरी ॥
गिरिधर पिय तुव कियौ दुचितौ चितु
कही न सकति मीठी अरु कौरी ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गोदोहन-रस तजि
दैन कही तोहिं पीत पिछौरी ॥

व्यारू–

२८३

[कान्हेरो

व्यारू स्याम अरोगन लागे।
बहु मेवा पकवान मिठाई व्यंजन करे मधुर रस पागे॥
दार भात घृत कढ़ी संधानौ, रुचिकर मुख सों मांगे।
'दास चतुर्भुज' के प्रभु दै जूंठन सब जन बड-भागे॥

आरती—

२८४

[बिभास

रतन जटित कनक–थार मधि सोहै
दीपमाल अगर आदि चंदन सों अति सुगंध मिलाई।
घनन घनन घंटा घोर, झनन झनन झालर झकोर
तत थेईथेई बोलति ब्रज की नारि सुहाई॥
तनन तनन तान मान, लेति जुवती सुर-बंधान
गोपी सब गावत हैं मंगल बधाई।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल, आरती वनी रसाल
तन मन धन वारति हैं सब जसोमति नँदराई॥

२८५

[केदारौ

राग–रंग रैनि गई सैन समै वेर भई,
पुहुप–तलप पर प्रवेस करत आरती॥

सुभग कुसुम भूषन अति भूषन नव तन बनाइ
बीरी पूरी नव कपूर पूरि डारती ॥
हाटक मनि रतन जरी, झारी कर जलनि भरी
रतिपति रसरंग सहित तन निहारती ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिवरधर, रसिक कुंवर सुंदरवर
केलि-कला कौतुक सखि ! प्रान बारती ॥

२८६

[सारंग

वृंदावन कुंज सघन बैठे व्रज कंजबदन
ललितादिक प्रमुदित अति करति आरती ॥
स्यामल अरु गौर अंग मन्मथ-मद करत भंग
अद्भुत छवि रंग चितै चॅवर ढारती ॥
मंजुल कल करत गान दुंदुभि सुर मधुर तान
मृगमद कर्पूर अगर बाति बारती ।
मुरलीधर वर किशोर 'चत्रुभुज' मन हरत चोर
आनँद हिं घोष निरखि प्रान बारती ॥

मान—

२८७

[विलावल

आजु कौ सिंगार सुभग सांवरे गोपाल कौ
कहत न कहि आवे सखि ! देखे बनि आवै ।
भूषन बसन भांति-भांति अंग-अंग अद्भुत छवि
लटपटी सुदेस पाग चित्त कों चुरावै ॥

मकर कुंडल, तिलक भाल, कस्तूरी अति रसाल,
चितवनि लोचन बिसाल कोटि-काम लजावै ।
कंठसरी बनी लाल पटुका कटि छोरनि छबि
त्रिभुवन–त्रिय को जु निरखि धीरज रहावै ?
मेरे संग चलि निहारि निकुंज-महल बैठे हरि
हौं तोसों निज बात कहौं जो तेरे जिय भावै ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर अंग-अंग कोटि-मदन-मूरति
बडभागिनि जुवति क्यों न हिरदै लपटावै ! ॥

२८८

[सारंग

चितवनि तेरीये जिये बसी ।
जब ब्रज-खोरि उलटि हरि मोहे ईषद हास हसी ॥
मोहन मन आतुरता अति सखि ! चलि दै नैन मसी ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधर पथ चितवत रसिकनु मांझ रसी ॥

२८९

[सारंग

बैठें क्यों बनै मोहि माई ! ।
सुंदर स्याम इतहिं पथ चाहत अति चित आतुरताई ॥
तुव मुख हास बसी हरि के जिय तो हौं बेगि पठाई ।
तूं बिलंबति ठानति बहु ऊतर जानी है चतुराई ॥
सोई बडभागि जुवति त्रिभुवन में जो मोहन-मन भाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन रसिकवर अंग-अंग सुखदाई ॥

२९०

[सारंग

सुनहि सखि ? सुचित हित बात मेरी श्रवन धरि
चलहि वृंदाविपिन बैठे जहां गिरिधरन।
सघन तरु-छांह धरें चारु नट-भेष सुंदर
सिरोमनि रसिक सुभग साँवळ बरन॥
नव किसलय कुसुम रचि सेज चितवत पंथ
एकटक नैन नहिं देत पलकौ परन।
बेग पाउं धारि ब्रजनारि! पिय-भांवती
तजि गहरु पहिरि तनु विविध पट आभरन॥
निरखि नागर नवल नंद-नंदन रूप माधुरी
अंग - अंग जुवतिजन - मन - हरन।
'चत्रुभुजदास' प्रभु भेटि बडभागि तिय
चतुर - चूडामनी सुरत - सागर - तरन॥

२९१ [सारंग

समुझति हौं नीकें तेरे मान हिं।
दै पट-ओट बधिक-सी विधि तानति है नैन बान हिं॥
प्रगट मौन हरि पिय सों मुख रुख भेद परत नहिं आन हिं।
अंतर ही मिलवति मन सों मन, तकति भृकुटि उनमान हिं॥
दुरत न चंद ओट झीने बादर कतहि रूसनो ठान हिं।
'चत्रुभुजदास' उमगि तन परसै गिरिधर रसिक सुजान हिं॥

३०४

[केदारो

नवल किसोर रसिक नँद-नंदन सुहथ संवारयौ कुंज-भवनु ।
तरनि-तनया-तट परम रम्य वन सबहि सुख बहै मलय पवनु ॥
अंबुज-दलनि सेज रचत रुचि अति अधीर बहु रवनी-रवनु ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर प्यारे पें छांडि गहरु करि बेगि गवनु ।

३०५

[केदारो

मिलिहि नागरि ! नवल गिरिधर सुजान कौं ।
सुंदरी कनक तन साजि भूषन बसन,
कुंज के महल चलि बेगि तजि मान कौं ॥
तरनि-तनया-तीर परम रमनीक बन
बिहरि संग करहि बस सब गुन-निधान कौं ॥
रागु केदार सुनि श्रवन बडभागि तिय !
निरखि अंग-अंग रसिक मुरलि-कलगान कौं ॥
'चत्रुभुज' प्रभु चतुर चूडा-रत्न
करत अभिलाष तुव अधर-मधु पान कौं ।
अरपि सरबसु कुसुम-सेज सुख बैठि सखि !
भेटि सुंदर सुघर सांवल सुठा न कौं ॥

३०६

[केदारो

सजनी ! आजु गिरिधर लाल पगिया धरें पेच बनाइ ।
मानु छांडि संभारि नारि ! निहारि पिय-मुख आइ ॥
निरखि आभा कोटि-मनमथ रहे हैं सिर नाइ ।
'चत्रुभुज' प्रभु रसिक मोहनु लीजिये उर लाइ ॥

(इसी तुक से छीतस्वामी का एक पृथक् पद है)

३०७

[केदारो

प्यारी! तू देखि नवल निकुंज नाइक रसिक गिरिवरधरन।
सकल अंग सुख-रासि सुंदरि! सुभग सांवल बरन॥
सहज नटवर-भेष दरसन नैन सीतल करन।
कर सरोज उरोज परसत जुवति जन-मन हरन॥
बेगि चलि मिलि गुन-निधाने साजि पट आभरन।
'चत्रुभुज' प्रभु नवल नागर सुरत-सागर-तरन॥

३०८

[मलार

आयौ री! पावस–दल साजि गाजि मदन नरेश प्रबल
जानि प्रीतम अकेले नव कुंज-सदनु।
पवन बाजी, गज बदरा मतवारे कारे भारे
आवत डरपावत बग-पांति रदनु।
धुरद-धुंकारे मोर कोकिला पिक करत सोर
बूंदनि बान मारे चपला असि-कदनु।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिवरधर की सहाइ करि राधे!
जोवत पथ, पलन त्यागि तेरौ ही बदनु॥

३०९

[केदारो

आजु मानिनी मनवत चतुराई करि
अति हठु कियौ सो तौ नेकु ही में छूट्यौ।
सौहें खाइ आभूषन दै–दै छोरन पाइनि परत
ऐसी झकझोरनि में मेरौ हार टूट्यौ॥

२९८

[नट

चलि अंग दुरायें संग मेरें ।

मुख हिं मुनि–व्रत गहें, अधरनि ओट दिये,

दसन दामिनि चकमति तेरें ॥

तजि नूपुर कटि छुद्रघंटिका श्रवन सुनत खग–मृग घेरें ।

'चत्रभुजदास' स्वामिनी ! सिंगार सजि निपट इहें गिरिधर नेरें ॥

२९९

[कानरो

कौन टेव नागरी ! दिन ही दिना तोहिं मान की ।

कहा रही मौनु लै तूं नेंकु बचन कान दै

सुनि री ! सुचित बात एक सांवरे सुजान की ॥

छांडि गहरु पाउं धारि सुंदरी विचित्र नारि

सकुचिहै मराल निरखि सहज गति सुठान की ।

'चत्रभुज' प्रभु कुंज-भवन तुव हित रचि सेज सुमन

परम भांवती गिरिधर सकल गुन–निधान की ॥

३००

[कानरो

चलि री चतुर कुरंगमनैनी ! ।

भूषन बसन साजि तन सुंदरि, विविध कुसुम गूंथहि रचि बैनी ॥

नवल किसोर रसिक गिरिधर-सँग कुंज-कुटीर करहि निसि सैनी ।

छांडि, गहरु करि गवन बिपिन में 'चत्रभुज'प्रभु प्रिय-मनु हरिलैनी ॥

३०१

[कानरो

चतुर जुवति गवनति पिय पें बन।
गडे उर रसद वचन सहचरि के प्रेम मगन भूषन साजति तन॥
बनि सिंगार सब अंग-अंग प्रति मोह्यो रति-पति नैननि के अंजन।
चत्रभुज'प्रभु गिरिधर भुज भरि लई सौदामिनि भेटी मानों नव घन॥

३०२

[कानरो

पिय-सनमुख गवनति गजगामिनि।
साजि सिंगार पहिरि पट भूषन नख-सिख अंग-अंग अभिरामिनि॥
जमुना-पुलिन सुखद बृंदावन तैसिये सुभग सरद की जामिनि।
कुंज-कुंज प्रफुलित द्रुम बेली देखत प्रेम मगन भई भामिनि॥
अति उदार रस-रासि रसिक पिय भुज भरि-भरि भेटति बर कामिनि
'चत्रभुज'प्रभु गिरिधर ऐसें सोभित मानों नवघन (में) सौदामिनि॥

३०३

[केदारो

सिखवत-सिखवत बीती अब रतियां।
कोटि कही एकौ न कान करी हृदै गांठि तेरे भेदति न बतियां॥
बांह छिडाइ रहति ब्रजसुंदरि! देति ओट अंचर की गतियां।
तजि इह ज्ञानु सयानु आपुनौ समुझि सखी! मेरी बहु मतियां॥
'दास चतुर्भुज' प्रभु के बोलत बिलंबु करे ऐसी कौन जुवतियां॥
रसिक-राइ गिरिधरन छबीले भरि आंकौ सीतल करि छतियां॥

२९२   [सारंग

नागरि ! छांडि दै चतुराई ।
अंतर गति की प्रीति परस्पर नाहिन दुरति दुराई ॥
ज्यों - ज्यों ठानति मान मौन धरि, मुख रुख राखि रुखाई ।
त्यों - त्यों प्रगट होत उर अंतर काच कलस जस झांई ॥
भृकुटि भाव भेद मिलवति सब नाइक सुघर सिखाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर गुन-सागर सैननि भली पढाई ॥

२९३
                                                  [सारंग

सारंग महेलरी नित प्यारी ।
जाकौ गान करत निसि बासर लाल गोवर्द्धनधारी ॥
सोई सारंग सुनि श्रवन बेगि उठि चली वृषभानु-दुलारी ।
सोई सारंग मुरलिका मधुर सुर कूजत बिपिन-बिहारी ॥
सारंग नित सारंग मिलि गावत कुंज रहे रंगु भारो ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर गुन-सागर गुन-निधान ब्रजनारी ॥

२९४
                                                  [सारंग

चलहु लाल! गिरिधर नागर चतुर सुजान ! ।
सुनि तुम्हारो संदेस राधा – उर लागे हैं विषम मदन के बान ॥
गुप्त मते की बात जबहि मैं हरुवें कहि मेली लै कान ।
मुरछि परी तन बिसरि गई सुधि, अँग-अँग दसा आन की आन ॥
घूमत सिथिल प्रस्वेद भींजि पट, मरमे हैं तन बचन संधान ।
ओषधि जतन करत अकुलानी, सब सखियनु भूले औसान ॥
बिकल देखि तुम पें उठि दौरी, नहिं उपचार हमारे मान ।
'चत्रुभुज' प्रभु पिय स्याम सुधा–निधि ! बेगि मिलहु राखहु प्रिया–प्रान ॥

२९५

[नट नारायन

अछन अछन पगु धरनि धरै ।
अंधियारी निसि कोउ न जाने, नूपुर-धुनि जिनि प्रगट करै ॥
किसलै कुसुम सुहथ रची है री रचना, चलि निहारि नव कुंज धरै ।
'चत्रभुजदास' स्वामिनी बेगि मिलि. रसिक-राइ गिरिधरन वरै ॥

२९६

[नट नारायण

रस ही में बस कीन्हे कुंवर कन्हाई ।
रसिक गोपाल रसिक रस रिझवति
रस ही में तासों रिस तजि री माई ! ॥
प्रिय कौ प्रेम रिस सों न होइ रसीली राधे !
रस ही में वचन श्रवन सुखदाई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर रस बस भए तासों
कुरस कत मिलि रहै हिरदे लपटाई ॥

२९७

[नट

मोहन-वदन निहारि नागरि नारि !
छांडि दे री बातें सब अटपटी ।
तू जु संभारैगी तब मोहिं सखी ! जब-
नंद-नंदनु बिनु लागैगी जिय चटपटी ॥
कितकु कहि सिखाई सीख न माने तू माई !
ऊतरु ही ऊतरु लेत झटपटी ।
'चत्रुभुजदास' ऐसी को है जु धीरज धरै !
गिरिधरलाल हिं देखे बांधे पाग लटपटी ॥

अनेक जतन करि मनुहारि कीनी एती
एतौ हठु कियो पै ता भाँति न खूट्यौ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मिस करि थाके
तुव मंगल वचन कहे उठि हँसि ग्रीवा लपटाइ सुख लूट्यौ ॥

३१०

[केदारो

उठि चलि प्यारी ! बोलत तोहिं हरी ।
सूधेऊ न चितवति बादि ही बितवति
सरद सुभग निसि जाति टरी ॥
नवल कुंवर इकटकु मग चितवत
पलक न लावत एकु घरी ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन मंद हँसि
उमगि मिलै किन ? आनँद भरी ॥

३११

[टोडी

कैसौ हियो माई ! या अबला कौ
नेंकु न गांठि हिये की खोलै ।
कोटिक भाँति कह्यो समुझाई
मानै ना सखियनि की कोलै ॥
स्याम-हिये ताही कौ हित जू
प्रान-पियारे सों रूसे हू बोलै ।
'चत्रुभुजदास' गिरिधर पिय सों सोई
आइ नहीं रस घोलै ॥

३१२

[संकराभरन

चलहि वृंदाविपिन बैठे जहाँ गिरिधरन ।
सघन तरु छाँह तरें चारु नटभेष धरें ।
सुंदर सिरोमनि रसिक सुभग साँवल बरन ।।

नव किसलय कुसुम रचित सेज चितवत पंथ
एक टकु नैननि हीं देत न पलकन परन ।
बेगि पगु धारि ब्रजनारि ! पिय भाँवती करि
गहे रूप हेरि तन, विबिध पट आभरन ।।

निरखि नागरि नवल नंदनंदन रूप माधुरी
अंग अंग जुवति-जन-मन-हरन ।
'चत्रुभुज' दास प्रभु गिरिधर प्यारे पै
छाँडि गहरु बेगि गवन ।।

३१३

[नट

जो तू मेरे कहें नव-कुंज चलै ।
रसिक-सिरोमनि नंदलाल सौं
प्रीति पुरातन प्रगट फलै ।।

बहुविधि कुसुम-तल्प अति राजत
तुव मग जोवै बैठो ढील लै ।
'चत्रुभुज'दास लाल गिरिधर पिय
चलि नागरि ! मनमथहिं दलै ।।

३१४

[मलार

तेरौ मनु गिरिधर बिनु न रहैगौ ।
बोलेगें मोर मुरली की धुनि सुनि
तब तनु मदन दहैंगौ ॥
जानेगी तब मानेंगी री !
आली प्रेम–प्रवाह बहैगौ ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरनलाल बिनु
नित उठि कौन कहैगौ ॥

३१५

[नट

पिय कौ मन बसै री ! लाडिली तेरे तन माँही ।
बार बार यह रूप विचारत नैननि मूँदि धरि ध्यान,
आन कछु न सुहाइ ऐसी देखी मैं दसा बन माँही ॥
रसिक-राइ सिरमौर नंद-सुत बैठे,
करि सँकेत सेज रचि कुंज-सदन-माँही ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन-अंग सँग
मिलि जैसें ब ज्यों दामिनि घन–माँही ॥

३१६

[केदारौ

बैठे नब निकुंज–कुटीर ।
धरें नटवर–भेष गिरिधर तरनि–तनया तीर ॥

मुदित बृंदा-विपिन गुंजत मधुप,कोकिल, कीर।
सरद निसि ससि उदै पूरन मंद मलय समीर॥
चलहि साजि सिंगारु सुंदरि! पहिरि आभरन चीर।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन कौं मिलि मेटि मन्मथ-पीर॥

३१७

[केदारौ

मान मनावत मानत नाँई।
स्यामसुंदर तेरे हित कारन पाती विरह पठाई॥
आवत जात रैनि सब बीती दूखन लागे पाँई।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल अब टेरत हैं चलि तहाँ ई॥

३१८

[कानरौ

मान तजि मानिनी कियौ पिय पैं गवँन।
केस ग्रंथे सरस नैन अंजन दिये
पहिरि दच्छिन चीर सजे तन आभरन॥
हंस-गज-गामिनी आइ पिय के निकट।
निरखि छबि माधुरी अंग भेटी स्वँन।
'चत्रुभुज' दास मिलि रैनि सुख अति कियो
परसि कें अंग सों लाल गिरिवरधरन॥

३१९

[विहाग

मान तजि मानिनी चली बन कौं साजि।
पहिरि पट आभरन बिविध अंग अंग प्रति
देखि अंजन नैन गयो मन्मथ लाजि॥

३२२

[मलार

दोउ मिलि पौढ़ें ऊँचे अटा हो ।
स्यामा स्याम घन-दामिनी मानों उनई नवल घटा हो ॥
अंग सों अँग मिलि मिलि मन सों मन ओढ़ें पीत पटा हो।
देखें बनै, कहि न बनि आवै, 'चत्रभुजदास' छटा हो ॥

३२३

[मलार

दोउ जन पौढ़ें ऊँची चित्रसारी ।
बौछासन जतननि हित ठाढ़ी ललिता ललित तिवारी ॥
नन्ही नन्ही बूँद बरसि बादर तें लागति हैं अति प्यारी ।
गान करत गोपी-जन द्वारें वरषा रितु रस न्यारी ॥
रति-रस पागे स्याम श्री स्यामा स्रवन सुनत सुखकारी ।
'चत्रभुजदास' डरपि गरजन सुनि लाल भरति अँकवारी ॥

३२४ [केदारौ

पौढ़ें प्रेम के परजंक ।
अधर-सुधा रस प्यावति प्यारी कमलनि कौ जो अंक ॥
पान करत अघात नाहीं ज्यों निधि पाई रंक ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर पिय जीते लूट्यो मदन निसंक ॥

सुरतान्त—

३२५

[बिभास

गोवर्द्धन-गिरि-सघन कंदरा रयनि-निवास कियो पिय प्यारी ।
उठि चले प्रात सुरत-रस भीने नंद-नंदन बृषभानु-दुलारी ॥

इत बिगलित कच माल मरगजी अटपटे भूषन रगमगी सारी ।
उतही अधर मसि पागु रही धसि दुहूँ
दिसि छबि लागति अति भारी ॥
घूमत आवत रति-रनु जीते करिनि-संग गजवर गिरिधारी ।
'चत्रुभुजदास' निरखि दंपति-सुख तन-मन-प्रान कीनो बलिहारी ॥

३२६

[बिभास

रजनी राज लियो निकुंज नगर की रानी ।
मदन महीपति जीति महा रनु स्रम-जल सहित जँभानी ॥
परम सूर सौन्दर्य भृकुटि धनु अनियारे नैन बान संधानी ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर रस-संपति बिलसी यों मनमानी ॥

३२७

[भैरव

डगमगात आए नट नागर ।
कछु जँभात अलसात भोर भएँ अरुन नैंन घूमत निसि-जागर ॥
रसिक गोपाल सुरत-रन कौ जसु सकल चिन्ह लाए उर कागर ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन कुंज-गढ रति-पति जीत्यो रति-सुख-सागर ॥

३२८

[भैरव

भोर डगमग चलत जीति मनमथ चले ।
सकल रजनी जगे, नैन नहिं पलु लगे,
अरुन आलस चलत बैन लागत नले ॥

करन नागर नटत, चिन्ह प्रगटित करत,
बसन आभूषन सुरत-रन दलमले।
'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधरन छबि बढी,
अधर काजर कुमकुमा अँग-अँग रले॥

३२९

[बिलावल

आवति भोर भयें कुंजभवन तें कहुँ-कहुँ अरुझे कुसुम केस में।
रति-रस-रंग भीनी सोहै सारी तन झीनी,
भूषन अटपटे अंग-अंग छबि देखियत सुदेस में॥
चोप तें चोप भई, बिरहज ताप गई,
सरद-चंद नहिं गनति लेस में।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर-संग निसि जागी
जुवति-सिरोमनि घोष देस में॥

३३०

[टोडी

बहुत प्रसंन भए पिय, प्यारी नें टोडी रागु बैनु धरि गायो।
सुर-संगीत-बंधान मधुर मुख ऐसौ कछु अद्भुत भेद जनायो॥
नाना तरंग उपजि नाना बिधि प्रति छिनु और में और बजायो।
'चत्रुभुजदास' स्वामिनी गुन-निधि रसिक-राइ
गिरिधरन रिझायो॥

३३१

[केदारौ

आजु अधिक तन ओप अलक छूटें फूली-सी आई।
जानति हौं ब रयनि-सुख बितई कुंज-भवन देखियत नैन निकाई॥

कंचुकी के बंद छूटे मोतिनि की माल टूटी अरु कपोलनि पीक-
कहाँ तें धौं लाई ।
'चत्रुभुज' गिरिधर प्यारे मेटी जानी मैं तेरी बात पाई ॥

३३२

[बिभास

प्रात समै नव कुंज द्वार ह्वै
ललिता ललित बजायो बीना ।
पौढें सुने स्याम स्यामा दोउ
दंपति छबि अति प्रवीन प्रवीना ॥

रस-भरी रसिक रसिकनी प्यारी
कोक-कला नवीन प्रवीना ।
'चत्रुभुजदास' निरखि दंपति-छबि
तन मन धन न्यौछावर कीना ॥

३३३

[बिलावल

पिय के महल तें उठि चली प्यारी ।
अति स्रम सिथिल अंग जब देखे
बसन केस कारे लट भारी ॥
ललितादिक सखी देखि हिय हरषित
सेज सुखद कर फेर सम्हारी ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु निरखें स्याम स्यामा मुख
तन मन धन कीन्हों तन वारी ॥

३३४

[भैरव

भोर भएं लाल ! धरत पग डगमगात ।
पाग लटपटी सीस बिराजत नैंन उनींदे झपि-झपि जात ॥
अधरनि अंजन पीक कपोलनि नख के चिन्ह देखियतु गात ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन ! भले जू तुम आए मोहिं दिखावन प्रात ॥

३३५

[ललित

सब निसि जागर नागर लाल ललौंहे नैंन ।
आए उठि प्रात अरमात डगमगात दरस परस सुख दैंन ॥
हौं जो कहति बात स्याम गात है दै अंग--अंग खौर सब भए सैंन ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर अटपटे बैन
लटपटी पाग सीस घूमत घूमरि रंग
रवन ! भवन नेंकु कीजिए सैंन ॥

३३६

[विलावल

लटपटी पाग तें पहिचाने ।
खुले बंद और अरुन विराजत आभूषन अरु उर विरुझाने ॥
जटित क्रीट पर मोर-चंद्र रवि रहे सिथिल अलक कुँभलाने ।
द्रग विलास, रस रास-रंगजुत विवस भए पलटाने ॥
करनफूल झूमक गजमोती विथुरि रहे लपटाने ।
अधर-माधुरी मत्त दुहूं दिसि कुंवरि कुँवर लिपटाने ॥
वेनी बाल वानिक नखसिख पहिं उदित जलज अरुझाने ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नीकें हँसि देखि मुसकि मुसकाने ॥

३३७

[भैरव

गिरिधर लाल के रंग भरी।
सौंधे सने वसन भूषन तन कुंज के द्वार खरी ॥
छूटे केस सुदेस सगबगे केसरी आड ढरी।
अधर कपोल चितेरी चतुर पिय रचना रुचिर करी ॥
अरुन नैन घूमत आलस जुत पलु-पलु घरी-घरी।
'चत्रुभुज' प्रभु-सँग सब निसि जागी पलहु न पलक परी ॥

वञ्चिता (खण्डिता)—

३३८

[विभास

आलस उनींदे नैना घूमत आवत मूंदे
अधिक नीके लागत अरुन बरन।
जागे हो सुंदर स्याम ! रजनी के चारयौं जाम
नेंकु हू न पाए मानों पलक परन ॥
अधरनि रंग-रेख उरहिं चित्र-बिसेख
सिथिल अंग डगमगत चरन।
'चत्रुभुज' प्रभु कहां बसन पलटि आए ?
सांचीये कहो गिरिराजधरन ! ॥

३३९

[भैरव

भोर तमचुर बोले दीनों जु दरसना।
आतुर व्है उठि धाए डगत चरन आए
आलस में नैन बैन अटपटी रसना ॥

संध्या जु कहि सिधारे बचन जिय में संभारे
सकुचिकें मंद-मंद प्रगटित दसना ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन ! सिधारो तहां
जहां रति-रंग-रस पलटाए बसना ॥

३४०

[भैरव

घूमत मत्त गज ज्यों चलत डगमगे ।
बतियां कहत सैन, न मुख आवत बैन,
आलस उनींदे नैन सोभित रगमगे ॥
नागर नंदकिसोर नीकी छबि आए भोर
अंग-अंग रति-रंग चिन्ह जगमगे ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नहिं लागे पल चारि जाम
जीति काम रहे जु टगमगे ॥

३४१

[भैरव

सोभित सुभग लटपटी पाग ।
भीने रसिक प्रिया - अनुराग ॥
कुमकुम अलक तिलक सेंदुर छबि, अरुन नयन घूमत निसि-जाग ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नीके लागत आलस-वस सब अंग-बिभाग ॥

३४२

[भैरव

आजु छबि देत नैना आलस भरे रगमगे ।
रयनि पलक न परी, सुरत-रन जय करी
भोर आए लाल धरत पग डगमगे ॥

तन और गति भाँति, कहत न कही जाँति
कांति अद्‌भुत सकल अंग-अंग जगमगे।
'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधरन भली करी
पलटि आए बसन सोंधे मिले सगबगे ॥

३४३

[विभास

भलें आए भोर गिरिवरधरन !
अरुन नैन जंभात आलस धरत डगमग चरन ॥
पाग लटपटी पलटि परे पट अटपटे आभरन।
सिथिल-अंग-अंग देखियतु हैं निसा के जागरन ॥
नव त्रिया-संग पहर चारयौं पल न पाए परन।
'चत्रुभुज' प्रभु जीति रति-रन कियौ रतिपति सरन ॥

३४४

[बिलावल

आजु अरुन नैन (नि) छबि नीकी।
रति रस-रंग निरखि उपमा कौं कोटि मदन-द्युति फीकी ॥
रंजित तिलक भृकुटि कपोल तामें सोभा अधर मसी की।
डगमगात अलसात भोर उठि दरसु दियौ सु भली की ॥
'चत्रुभुज' प्रभु सुजान सुघर ! किन उर-रचना रची नीकी।
गिरिधर लाल ! कहां पलटे पट ? सोई ब कहो धौं जी की ॥

३४५

[बिलावल

मोहन घूमत रतनारे नैंन, सकुचत कछु कहत बैंन,
सैननि ही सैंन उतरु देत नंद – दुलारे।
भूषन सब अटपटे अरु सीस पाग लटपटी,
रति-रन लई झटपटी, अति सुभट स्याम प्यारे! ॥
भौंन कियो कुंज-सदन, भोर आए जीति मदन,
पलटि परे बसन, नाहिंनें अजहूं सँभारे।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर! अब दर्पनु लै देखिये
सेंदुर कौ तिलकु, सुभग अधर मसि सों कारे॥

३४६

[रामकली

लाल! रसमसे नैन आजु निसि जागे।
अति बिसाल अरसांत अरुन भए रति–रन के रंग पागे॥
सुंदर स्याम सुभगता प्रगटी अंग-अंग नख–छत दागे।
मानहुं कोपि निदरि सनमुख सर साथ भए अरि भागे॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन अधिक छबि बंदन भृकुटी लागे।
मानहुं मन्मथ–चाप भेट धरि रह्यो जोरि कर आगे॥

उद्धव-संदेश—

३४७

[सारंग

तुम सों क्यों कहौं ब्रजनाथ ! ।
मोहू कों अति गिरा गद्‌गद देखि बिरह अनाथ ॥
बांधि साहस लिखी पाती धरी मेरे हाथ ।
सिथिल भई फिरि फुरी नांही और मुख तें गाथ ॥
सुभट वर तुम बिना पिया ! तनु दहत मैन अकाथ ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन रति-पति जीति करहु सनाथ ॥

३४८

[सोरठ

ऊधौजू ! कहत न कछू बनै ।
हरि-बिछुरें हू कठिन बिरह के सहति बान जितनै ॥
उह ब्रज-रीति प्रीति पहिली वन कुंज कुटीर ठनै ।
रजधानी में कत भावत हैं ए द्रुम ताल घनै ॥
पावस रितु के रंग-संग मिलि खेलत प्रेम सनै ।
भींजत मोहिं जानि बूंदनि पट-ओट किए अपनै ॥
घोष-वास रस-रासि औरु सुख नहिं मुख परत गनै ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन विना बैभव सब सपनै ॥

*

३४९

[सारंग

नैननि निर्झर झरत सुमिरि माधौ! वे पहिली बतियाँ।
नहिं बिसरात निरंतर सींचत बिरहानल प्रबल भयौ घतियाँ॥
नवल किसोर स्यामघन सुंदर बेनु-ब्याज बोलीं अधरतियाँ।
रास-बिलास विनोद महासुख गान बंधान नृत्य बहु भतियाँ॥
संग बिहार भवन वन निसिदिन अब संदेस पठवत लिखि पतियाँ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर - दरसनु बिनु नीर - बिमुख जैसे
मीन की गतियाँ॥

३५०

[सारंग

ब्रजजन अति आधीन दुखारे।
कहियो पथिक! संदेस सुरति करि जहँ हैं नंद-दुलारे॥
गोप गाँइ गोसुत गुवाल सब मलिन देखियतु कारे।
निरभै जानि गोपाल तुमहिं-बिनु बिरह दवानल जारे॥
तब इह कृपा नंद-नंदन की गिरि कर धरि जु उबारे।
ते आकुल व्याकुल जु रैनि दिन क्यों बूझिए तिहारे॥
जे गुन सैल-धरन प्यारे के कहाँ लगि परत सँभारे।
'चत्रभुज दास' प्रभुवे सुमिरत (हीं) नैननि बहत पनारे॥

प्रकीर्ण

※

भक्तनि की प्रार्थना—

३५१

[बिभास

स्याम सुंदर प्रान-पियारे ! छिनु जिनि होहु निन्यारे।
नेंकु की ओट मीन ज्यों तलफत इनि नैननि के तारे ॥
मृदु मुसकानि, बंक अवलोकनि, डगमग चलनि सहज में सुढारे ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर-बानिक पर कोटिक मन्मथ वारे ॥

३५२

[भैरव

भोर भांवतो गिरिधर देखौं।
बिमल कपोल, लोल लोचन छबि,
निरखिकें नैन सुफल करि लेखौं।
नख-सिख रूप अनूप बिराजित अंग-अंग मन्मथ-कोटि बिसेखौं।
'चत्रुभुज' प्रभु रस-रासि रसिक कों बडे भाग-बल इकटक्कु पेखौं ॥

३५३

[भैरव

भावये मनसि गोकुल-नरेशम्।
यस्तु तत्पद-पद्म-मकरन्द लुब्ध
हृदि संचरीकर्तु संत-नरेशम् ॥ (१)
निज व्रज-वल्लभी-मध्य वृंद मध्यस्थ-

मति चतुरता संस्पृष्ट निवहत उरोजम् ।
तादृशीभि र्विविध रासादि–लीला–
सुकंठ धृत ललित करयुग-सरोजम् ॥
'चत्रुभुज' मखिल जगदाधार–रूपया
निज कृपया निदर्शित सुरूपम् ।
भक्तजन–दुःख–विध्वंस–कृति तत्परं
पालिताशेष यदु – वंश – भूपम् ॥

३५४

[टोडी

समुझि न परति मोहिं या मन की ।
एते मान विषय-रस राच्यौ निसि दिन चित्त रहति परधन की ॥
कैसें जठर-अगनि में राख्यौ सोउ विसरयौ कृतघन की ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन नहिं जानतु सबै करतु अनबन की ॥

यमुनाजी—

३५५

[रामकली

चित्त में जमुना निसि दिन जो राखौ ।
भक्ति के वस कृपा करत हैं सर्वदा
एसौ जमुनाजी कौ है जु साखौ ॥
जाहि मुख तें 'जमुना !' नाम उच्चरे
संग कीजे अब जाइ ताकौ ।
'चत्रुभुज दास' अब कहत हैं सबनि सों
तातें 'जमुने !' यह नाम भाखौ ॥

३९६

[रामकली

प्रानपति विहरत जमुना - कूले ।
लुब्ध मकरंद के बस भए भ्रमर जे
रवि-उदै देखि मानों कमल फूले ॥
करत गुंजार मुरली के, साँवरो-
व्रजवधू सुनत तन-सुधि जो भूले ।
'चत्रुभुज दास' जमुना - प्रेम - सिंधु में
लाल गिरिधरन अब निरखि झूले ॥

३९७

[रामकली

वार वार जमुने ! गुन-गान कीजै ।
यही रसना भजौ नाम रस अमृत
भागि जाकौ जोई सोइ लीजै ॥
भानु-तनया-दया अति ही करुनामया
इनकी करि आस अब सदा जीजै ।
'चत्रुभुज दास' कहै सोई पिय - पास रहै
जोई जमुनाजी के (सु) रस - भींजै ॥

३९८

[रामकली

हेत करि देत जमुने बास कुंजे ।
जहाँ निसि वासर रास में रसिक वर
कहाँ लों बरनिये प्रेम - पुंजे ॥

थकित सरिता-नीर थकित व्रजवधू-भीर
कोउ ब न धरत धीर मुरली सुनि रुंजे।

'चत्रुभुज दास' जमुने पद-पंकज जानि
मधुप की नाँइ चित लाइ-लाइ गुंजे ॥

३५९

[सारंग

यह कलि परम सुभ, जन धनि, श्रीविट्ठलनाथ-उपासी ।
जो प्रगटे व्रजपति श्रीविठ्ठल तो सेवक व्रजवासी ॥

व्रज-लीला भूल्यौ चतुरानन बल टोरयौ व्रजवासी ।
अब लौं सठ अवगनत अभागे गनत परस्पर हाँसी ॥

आत्मा हेत आप भए हैं हित दीपो नर-प्रकासी ।
देखियतु लोक-भानु अवलौकिक ज्यों गंगा सरिता-सी ॥

घर हरि-दरसन हरि-जसु गावत भक्ति मुक्ति-सी दासी ।
वदत न कछु 'चत्रभुज' वैभव भजनानंद - उपासी ॥
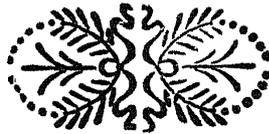
(१) परिशिष्ट

*

['चतुर्भुजदास' कृत प्रस्तुत पद-संग्रह के अतिरिक्त और भी कुछ पद प्राप्त हुए हैं— जिनकी प्रामाणिकता में संदेह है*। येह आदर्श प्रतियों में उपलब्ध नहीं हैं।]

३६०.

मोहन चलत बाजत पैंजनि पग।
सब्द सुनत चकृत ह्वै चितवत, त्यों ठुमकि ठुमकि धरत है डग।
मुदित जसोदा चितवति सिसु तन लै उछंग लावै कंठ सु लग।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लालकों, ब्रजजन निरखत ठाडे ठग-ठग।

३६१.

कान्ह सों कहति जसोदा मैया।
मेरे मोहन अनत न जैये घरहिं खेलौ दोऊ भया॥
ए तरुनी जोबन मदमाती झूठे हि दोस लगावै दैया।
तुम तो मेरे प्रान जीवन-धन मथिकै दूध पिवाऊं धैया॥
'चत्रुभुजदास' गिरिधरन कह्यौ तब हौं वन जाउँ चरावन गैया।
सुनि जननी मन अति हरषानी, मुख चूंमति अरु लेत बलैया॥

---

* इन पदों को प्रभुदयालजी मीतल ने स्वकीय अष्टछाप-परिचय में पत्र २७७ से २९६ तक संकलित क्रिया है।

३६२

मैया मोहिं माखन मिश्री भावै। *
मीठौ दधि मधु घृत अपने कर क्यों नहिं मोहिं खवावै॥

कनक दोहिनी दैकर मोकों गो-दोहन क्यों न सिखावै।
औट्यौ दूध धेनु धौरी कौ भरि कटोरा क्यों न पियावै॥

अजहूँ ब्याह करति नहिं मेरौ होइ निसंक नींद क्यों आवै।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर की बतियाँ लै उछंग पय पान करावै॥

३६३

घर-घर डोलत माखन खात।
ग्वाल बाल सब सखा सँग लियें सूने भवन धसि जात॥

जब ग्वालिनि जल भरि घर आई तब हिं भजे मुसिकात।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सों, नाहिंन कछू बसात॥

३६४

ग्वालिनि तोहिं कहत कों आयौ।
मेरौ कान्ह निपट बालक, क्यों चोरी माखन खायौ॥

बूझि विचारी देखि जिय अपुने कहा कहौं हौं तोहिं।
कंचुकि-बंद तोरैं ये कैसें, सो समुझि परत नहिं मोहिं॥

'चत्रुभुजदास' लाल गिरिधर सों झूठी कहति बनाइ।
मेरौ स्याम सकुच कौ लरिका पर-घर कबहुं न जाइ॥

---

* 'गोविंदस्वामी' कृत पद (पद संख्या ३९४ विद्या० कांक० प्रकाशन) की अपेक्षा इसका पाठ-सामञ्जस्य बहुत सुकर है।

३६८

सावन तीज हरियारी सुहाई माई,
रिमझिम रिमझिम बरसत मेह भारी।
चुनरी की पाग बनी चुनरी पिछौरा कटि
चुनरी चोली बनी चुनरी की सारी॥

दादुर मोर पपैया बोलत,
कोयल सब्द करत किलकारी।
गरजत गगन दामिनी दमकति
गावत मलार तान लेत न्यारी॥

कुंज महल में बैठे दोऊ,
करत बिलास भरत अँकबारी।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर छबि निरखत
तन-मन-धन न्यौछावरि वारी॥

.......卐.......

(२) परिशिष्ट

※

(पदों के अवशिष्ट अंश)

पदों के मुद्रित हो जाने बाद कुछ त्रुटित अंशों की पूर्ति और सुन्दर पाठ प्राप्त हुए हैं। निर्दिष्ट स्थानों पर उन्हें संयोजित कर लेना चाहिये :—

(१) पद सं. २० [पत्र १२ पं. २] शुद्ध पाठ :—

" भाजन दही समेत सीस तें लेत छीनि सब ही कों "

(२) पद सं ११२ [पत्र ७० पं. १६, १७] अन्तिम दो चरण जो अनुपलब्ध थे :—

" पावस ऋतु कौ रंगविलसि 'चत्रभुज' प्रभु के संग,
मोहन कोटि अनंग गिरिधर अंग–अंग सोहावने "

(३) पद सं. १४२ [पत्र ८५ पं. १३, १७] सुन्दर पाठ :—

" मंगल आरति करों प्रात ही वारन निरखत होत परम सुख

....

निरखि करों दूरि सब रैनि को बिरह दुख " ॥

(४) पद सं. १५१ [पत्र ८९ पं. १४, १५] अवशिष्ट अंश :—

"चत्रभुज प्रभु गिरिधरन चंद कों झूठे ही लावति खोरैं ।
व्है है काहू और गोपकौ इन ही के अनु होरै ॥"

इतिश्री 'चतुर्भुजदास' कृत
पद–संग्रह

समाप्त ।

शुद्धिपत्रक

✳

अशुद्धि	शुद्धि	पत्र	पंक्ति
सो	सु	१	१३
कलिष	कलित	,,	१४
[द्वि. पद की तुकान्त में सर्वत्र ' र ' अथवा ' रु ']		२	—
आपत	आवत	३	२०
१ कैल वचन	कौलव	,,	२२
कीजे	कीजै	११	१८
मुसक्याइ	मुसक्याइ	१२	४
ललो ताई	ललिताई	१५	६
सद्व	सब्द(अन्यत्र भी)	१८	५
सच	संच	,,	१४
अगिमित	अगनित	२४	६
का	कों	२५	१९
सवारि	सँवारि	२६	५
मान	मानि	,,	२२
वभो	वैभौ	३१	११
आज	आस	३२	२४
मझष	मझेष	३६	१८
बात	घात	३८	२०
भेलत	मेलत	४०	४
सूर	सुर	,,	१५
पास	पाग	४२	११
श्रीसुख	श्रीमुख	४७	८
खलत	खेलत	५२	१९
रहत	हरत	५५	६
पिचकॅाडनि	पिचकॅाइनि	५६	४
दुहूघा	दुहूँघा	,,	१६
सिंघु	सिंघु	,,	२१

अशुद्धि	शुद्धि	पत्र	पंक्ति
चितवनि	चितवति	६०	२०
डोल	डोल	६४	१४
पाडल	पाटल	६५	१७
गुलाल	गुलाब	६६	७
फले	फूले	,,	१५
ब माल	बनमाल	६८	११
षुतरी	पुतरी	६९	७
पद सं. ११२ में अनुपलब्ध अन्तिम दो तुकें		परिशिष्ट (२) में देखिये	
मन	मनु	७२	१२
गावती	गावति	७५	२०
जीय	जिय	,,	,,
तब	नव	,,	२१
सीखंड	सिखंड	७६	६
तरिकनि	लरिकनि	८४	१३
लर	कर	,,	१६
मया	मैया	८८	८
इह	इह	९३	४
तोर डार	तोरि डारि	९३	१२
चहुंधा	चहुंघा	९४	१२
सवन	स्रवन	,,	१३
घरवा	धुरवा	९५	२
एड भवग फुनि	एड भुवॅग फन	१०१	१९
चतुर्भुच	चतुर्भुज	१०३	११
माल	भाल	१०६	१९
छवि जात	छवि नहिं जात	१०७	७
मूषन	भूषन	१११	१२
पिया-संग	प्रिया-संग	११३	१७
राचत	राजत	११७	१६
भेटपु । भावते	भेटहु । भांवते	११८	१६

अशुद्धि	शुद्धि	पत्र	पंक्ति
घेनु	धेनु	११८	२०
ढयेरी	ठयेरी	१२०	२१
खरिकारी	खरिक री !	१२२	४
जाति	जात	,,	८
अदने	अपने	,,	१०
चौर्यो	चोरयो	१२३	२
भूलि	भूली	१२८	२४
ननिन	नैननि	१३०	२०
मेरा	मेरौ	१३३	१७
कहौ	कहा	१३४	२०
गिरि रन	गिरिधरन	,,	२१
वारंवार	वारंबार	१३५	७
आई	आइ	,,	२१
व्यौपार	व्यौहार	१३६	१४
घन	धन	१३८	९
ओति	होति	१३९	५
सधन	सघन	१४०	१३
लटकति	भटकति	,,	१६
घाइ	धाइ	,,	२५
कही	कहि	१४१	२४
मंग	भंग	१४३	१२
मोहि	मोहिं	१४४	१८
सुधर	सुघर	१४६	७
चकमति	चमकति	१४८	६
बेगि	बेगि करि	१५३	१४
मेटी	भेटी	१६०	४
नवीन प्रवीना	नवीन नवीना	,,	१२
नेंकु की	नेंकु ही	१६८	७
कर्तु संत	कर्ति स तु	१६८	२१
कों ! विचारी	क्यों । विचारि	१७३	१५, १७

' चतुर्भुजदास-पदसंग्रह '

प्रतीक-अनुक्रमणिका। *
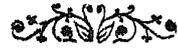
* सूचना : (१) कोष्टक में पद पाठान्तर प्रतीक वाले हैं।
(२) बडे अक्षरों की प्रतीकें वार्ता से सम्बद्ध पदों की हैं।
(३) पुष्पांकित प्रतीकें कुंभनदास कृत पद-साम्य की हैं।

---

* ' कुंभनदास ' सं. २८५ [वि. कांकरोली प्रका.]

* कुंभनदास पद सं. १८२ (वि. कांक. प्रकाशन)

* कुंभनदास पद सं. २८३ (कांक. वि. प्रका.)

* कुंभनदास पद सं. २८७ (वि. कांक.)